ऋग्वेद यजुर्वेद

ओ३म्

पवमान

(मासिक)

मूल्य: ₹ 15 (मासिक)
₹ 150 (वार्षिक)

वर्ष : 28 | आषाढ़-श्रावण | वि०स० 2073 | जुलाई 2016 | अंक : 07

मुद्रक: सरस्वती प्रेस, देहरादून | वजन: 50 ग्राम

महात्मा प्रभु आश्रित सत्संग भवन

वैदिक साधन आश्रम तपोवन,

नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

वैदिक साधन आश्रम तपोपन में दिनांक 15 मई 2016 को अग्निहोत्री धर्मार्थ ट्रस्ट नई दिल्ली द्वारा

सम्मानित वैदिक विद्वान

आचार्या डॉ. अन्नपूर्णा
द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरूकुल, देहरादून

चौधरी लाजपत राय आर्य
समाज सेवक, हरियाणा

श्री श्रद्धानन्द शर्मा
वैदिक विद्वान, नई दिल्ली

श्री राजेन्द्र काचरू, गीतकार
नई दिल्ली

ओ३म्
पवमान
वर्ष—28 अंक—7
आषाढ़—श्रावण 2073 विक्रमी जुलाई 2016
सृष्टि संवत् 1,96,08,53,117 दयानन्दाब्द : 192

★
—: संरक्षक :—
स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती
★
—: अध्यक्ष :—
श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री
मो. : 09810033799
★
—: सचिव :—
प्रेम प्रकाश शर्मा
मो. : 9412051586
★
—: आद्य सम्पादक :—
स्व0 श्री देवदत्त बाली
★
—: मुख्य सम्पादक :—
कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
अवैतनिक
मो. : 08755696028
★
—: सम्पादक मण्डल :—
अवैतनिक
आचार्य आशीष दर्शनाचार्य
मनमोहन कुमार आर्य
★

—: कार्यालय :—
वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,
तपोवन मार्ग, देहरादून—248008
दूरभाष : 0135—2787001

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com
Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	3
योग साधना है गृहस्थ जीवन	कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	4
'वैदिक मान्यतायें........	मनमोहन कुमार आर्य	8
माता—पिता बच्चों को उत्तम शिक्षा दें	विवेकानन्द शास्त्री	11
समाज में पड़ोसियों से मधुर सम्बन्ध...	आचार्य भगवानदेव वेदालंकार	14
परिवार के झगड़े टाले जा सकते हैं	गोपालभिक्षु	16
कर्म के स्वरूपों का दिग्दर्शन	शिवदेव आर्य	17
तीन प्रकार के उपदेश	प्रभु आश्रित जी महाराज	20
हृदय रोग में आयुर्वेदिक औषधियां	देवराज भाई पटेल	22
वेदों मे दान की महिमा	जगरूप सिंह छिकारा आर्य	24
व्रत, उपवास—क्या और क्यों?	आचार्य प्रमोद वेदालंकार	26
धर्म और अधर्म का ज्ञान	स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती	28
डा. रघुवीर वेदालंकार का सम्मान	मनमोहन कुमार आर्य	30
सचिव की कलम से	इं. प्रेमप्रकाश शर्मा	31
दानदाताओं की सूची		32

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून के बैंक खातों का विवरण

दान हेतु बैंक खाते का नाम	बैंक का नाम व पता	बैंक अकाउन्ट नं.	IFSC Code
आश्रम को दान देने के लिये			
1. ''वैदिक साधन आश्रम''	कैनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101001530	CNRB0002162
पवमान पत्रिका शुल्क			
2. ''पवमान''	कैनरा बैंक, क्लाक टावर ब्रांच देहरादून	2162101021169	CNRB0002162
सत्संग भवन एवं आरोग्य धाम के निर्माण में सहयोग हेतु			
3. ''वैदिक साधन आश्रम''	ओरियन्टल बैंक ऑफ कामर्स 17 राजपुर रोड, देहरादून	00022010029560	ORBC0100002
तपोवन विद्यानिकेतन स्कूल के लिये			
4. 'तपोवन विद्या निकेतन''	यूनियन बैंक, तपोवन रोड, नालापानी, देहरादून	602402010003171	UBIN0560243

पवमान पत्रिका में विज्ञापन के रेट्स
1. कलर्ड फुल पेज — रु. 5000/— प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज — रु. 2000/— प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज — रु. 1000/— प्रति माह

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

पारिवारिक सांमनस्यता

हमारे देश मे प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की व्यवस्था रही है। इसमे दादा, दादी, माता, पिता,, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्रियां, बहू आदि एक ही घर मे निवास करते हुए सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। परिवार के सभी सदस्यों के कर्तव्य और अधिकार आरम्भ से ही परिभाषित रहे हैं। माता–पिता का यह कर्तव्य बताया गया है कि वे पुत्रादि को ऐसा संरक्षण दें कि उनकी संतान योग्यतम बन सके। उनका संरक्षण अमृत तुल्य हो। पिता अपने बच्चों से मधुर वचन बोलें ओर खुले हाथ से उनकी सहायता करें। पिता का कर्तव्य है कि वह अपने बच्चों से स्नेह करे, उन पर क्रोध न करें और न कोई कटु भावना रखें। माता शुभचिन्तकों और हितैषियों मे अग्रगण्य है। अथर्ववेद में सांमनस्य सूक्त है, जिसमे परिवार का संगठन और उसके सदस्यों का आपस मे कैसा व्यवहार हो, इस पर परमेश्वर का आदेश मिलता है। इसमें कहा गया है कि भाई–भाई, बहिन–बहिन आपस में प्रेम से रहें। वे परस्पर द्वेष न करें। वे बड़े छोटे का भेदभाव न करें और मिलकर परिवार की श्रीवृद्धि करें। पुत्र के लिए आदेश है कि वह माता–पिता का आज्ञाकारी हो और उनके गुणों का अनुसरण करे। पुत्र के गुण बताए गए हैं कि वह शुभ कर्म करने वाला हो, माता–पिता का कृतज्ञ हो, वीर, कर्मठ और उत्तम गुणों से युक्त हो। महर्षि ने यजुर्वेद के मंत्र 13.19 का भाष्य करते हुए कहा है कि पुरुषों को योग्य है कि अपनी–अपनी स्त्रियों के सत्कार से सुख और व्यभिचार से रहित होके प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा नित्य करें और इसी प्रकार स्त्री लोग भी करें। परिवार मे सभी एक दूसरे को मन से स्नेह करते हों, यही पारिवारिक सांमनस्यता कहलाती है। मनुष्य जीवन के प्रारम्भ होते ही रिश्तों के बन्धन बनने लगते हैं। सबसे पहले जीव का बीजरूप बनते ही माता और पिता से सम्बन्ध बन जाता है। इसके बाद भाई, बहिन, दादा–दादी, नाना–नानी आदि से बन्धन जुड़ते हैं। आज संयुक्त परिवार की व्यवस्था चरमरा रही है। युवाओं को आत्म निर्भर होने के बाद माता–पिता के बन्धन मे रहना गंवारा नही है और न ही बुजुर्गों को नई पीढ़ी की स्वतन्त्र जीवन शैली रास आती है, ऐसे मे इन दोनो पीढ़ियों के बीच सामंजस्य बिठाने के लिए वात्सल्य बन्धन सेतु के रूप में काम करता है। बुजुर्ग अपनी संतान से कितना ही रुष्ट हो जायें, जब उनकी नजर अपने इन नन्हे–मुन्नों की मासूम मुस्कान पर पड़ती हैं और उनकी बातों को सुनते हैं तो उन पर एक जादू जैसा प्रभाव पड़ता है। हमारी संस्कृति केवल अपने घर के लोगों को ही परिवार नही मानती अपितु सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानती है। पाश्चात्य देशों मे अनेक वर्षों से एकल परिवार व्यवस्था चल रही है। शहरीकरण होने और व्यवसाय हेतु सदस्यों के घर से बाहर रहने के कारण अब हमारे देश मे भी संयुक्त परिवार व्यवस्था निरन्तर टूट रही और उसका स्थान एकल परिवार व्यवस्था ले रही है। ऐसे मे हमें विचार करना चाहिए कि हम अपने देश की संस्कृति के अनुरूप अपने परिवार को किस प्रकार से एकजुट बनाते हुए सुख पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

वेदामृत

पुकार सुनने पर वह रक्षा करता है

आ घा॑ गमद्यदि श्रव॑त् सहस्त्रिणी॑भिरूतिभि॑ः। वाजे॑भिरुप॑ नो हव॑म्।

ऋषिः—आजीगर्तिः शुनःशेपः।। देवता—इन्द्रः।। छन्दः—निचृद्गायत्री।।

विनय— वह आ जाता है, निश्चय से आ जाता है, हमारे पास प्रकट हो जाता है यदि वह सुन लेवे। बस, उसके सुन लेने की देर है। उस तक अपनी सुनवाई कराना, अपनी रसाई करना निःसन्देह कठिन है। उस तक हमारी पुकार पहुँच जाए, इसके लिए हममे कुछ योग्यता चाहिए, हममे कुछ सामर्थ्य चाहिए, परन्तु इसमे कुछ सन्देह नही है कि वह परमात्मदेव यदि पुकार सुन ले, यदि हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर ले तो वह निश्चय से आ जाता है—और तब वह आता है अपनी सहस्त्रों प्रकार की रक्षा—शक्तियों के साथ हमारी रक्षा के लिए मानो वह अनन्त महाशक्ति—सेना के साथ आ पहुँचता है। हमारी रक्षा के लिए तो उसकी तनिक—सी शक्ति ही बहुत होती है, परन्तु तब यह पता लग जाता है कि उसकी रक्षा—शक्ति असीम है। वह हमारे 'हव' पर—पुकार पर अपने 'वाज' के साथ (अपने ज्ञान—बल के साथ) आ पहुँचता है। वह पीड़ितों की रक्षा कर जाता है और हम अज्ञानान्धकार मे ठोकरें खाते हुओं के लिए ज्ञान—प्रकाश चमका जाता है, परन्तु यदि वह सुन लेवे। कौन कहता है कि वह सुनता नहीं? निःसन्देह, हमारी भाँति उसके कान नही, परन्तु वह परमात्मदेव बिना कान के सनुता है। यदि हमारी प्रार्थना कल्याण की प्रार्थना होती है और वह सच्चे हृदय से, सर्वात्मभाव से की गई होती है तो उस प्रार्थना मे यह शक्ति होती है कि वह प्रभु के दरबार मे पहुँच सकती है। आह! हमारी प्रार्थना भी प्रभु के दरबार मे पहुँच सके; हममे इतनी स्वार्थशून्यता, आत्मत्याग और पवित्रता हो कि हमारी पुकार उसके यहाँ तक पहुँच सके। यदि हमारी प्रार्थना मे इतनी शक्ति हो, हम अन्धकार मे पड़े हुए, दुःख—पीड़ितों, दुर्बलों के हार्दिक करुण—क्रन्दनों मे इतना बल हो कि इन्द्रदेव उसे सुन ले तो फिर क्या है। तब तो क्षण—भर मे वे करुणासिन्धु हम डूबतों को बचाने के लिए आ पहुँचते हैं। बस, हमारी प्रार्थना उन तक पहुँचे, हमारी पुकार मे इतना बल हो, तो देखो वे प्रभु अपने सब साज़—सामान के साथ, अपने ज्ञान, बल और ऐश्वर्य के भण्डार के साथ, अपनी दिव्य विभूतियों की फ़ोज के साथ हम मरतों को बचाने के लिए, हम निर्बलों मे बल संचार करने के लिए, हम अन्धों को अपनी ज्योति से चकाचौंध करने के लिए आ पहुँचते हैं।

शब्दार्थ—यदि=यदि नः हवम्=हमारी पुकार श्रवत्=वह इन्द्र सुन लेवे तो वह सहस्त्रिणीभिः ऊतिभिः=अपनी सहस्त्रों बलशालिनी रक्षा—शक्तियों के साथ और वाजेभिः=सहस्त्रों ज्ञानबलों के साथ घ=निश्चय से उपागमत्=आ पहुँचता है।

वैदिक विनय से साभार

योग साधना है गृहस्थ जीवन

—कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

आर्य जीवन की आधारशिला चार आश्रम हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये तीन आश्रम अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किसी न किसी प्रकार से इस आश्रम पर निर्भर रहते हैं, इसलिए यह समस्त आश्रमों का आधार कहलाता है। विवाह के बाद स्त्री और पुरुष गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर एक नया घर बनाते हैं। नैतिक जीवन के जो संस्कार लोगों में बाल्यावस्था में पड़ते हैं उनका विकास गृहस्थ जीवन में होता है। इस आश्रम में प्रवेश करते ही दायित्वों का क्रम आरम्भ हो जाता है। इस जीवन में प्रवेश करने पर पति—पत्नी न केवल त्याग की आदत डालते हैं अपितु एक दूसरे का ध्यान रखना भी सीखते हैं। पहले तो केवल पुरुष का कर्त्तव्य था कि वह पूरे परिवार के भरण—पोषण के लिए पुरुषार्थ करते हुए जीवन यापन करे। आज आधुनिकता से भरे इस युग में इस दायित्व को पति व पत्नी दोनों समान रूप से मिलकर निभाते हैं। प्रायः यह सुना जाता है कि माता—पिता संतान का पालन—पोषण इसलिए करते हैं कि वे बड़ा होकर उनकी सेवा करेंगे, परन्तु यह सोच सही नहीं है। संतान का पालन करना माता—पिता का दायित्व है। इसलिए इस दायित्व को निस्वार्थ भावना के साथ निभाना ही श्रेयस्कर है। गृहस्थ जीवन की सफलता के लिए धनार्जन अत्यंत आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक गृहस्थी का कर्त्तव्य है कि वह अधिक से अधिक पुरुषार्थ करते हुए धनार्जन करे, परन्तु इसमें इतना अधिक लिप्त न हो जाए कि उसके पास अन्य कार्यों के लिए समय न रहे। गृहस्थ के पांच महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य माने गए हैं। ये कर्त्तव्य पंच महायज्ञ के नाम से जाने जाते हैं। प्रत्येक गृहस्थ को ब्रह्म यज्ञ, देव यज्ञ, पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलिवैश्व देव यज्ञ अवश्य करने चाहिएं।

अब हम विचार करते हैं कि गृहस्थ जीवन एक योग साधना क्यों है। योग का अर्थ है— मिलाना या जोड़ना। मनुष्य अपने आप में एक प्रकार से अपूर्ण होता है और इस अपूर्णता को मिटाने के लिए किसी दूसरी शक्ति से अपने को जोड़कर अपनी अपूर्णता को दूर करते हुए अधिक शक्ति संचय करता है। योग का उद्देश्य भी एक प्रकार से यही है। अनेक प्रकार के योगों में गृहस्थ योग भी एक योग पद्धति है। प्राचीन काल में अधिकांश ऋषि गृहस्थ होते थे। वशिष्ठ के सौ पुत्र थे। अत्रि की पत्नी अनुसुइया और गौतम की पत्नी अहिल्या थी। महर्षि याज्ञवल्क्य की गार्गी और मैत्रेयी नाम की दो पत्नियां थीं। गृहस्थ जीवन में रहते हुए ही उन्होंने न केवल तप करते हुए आत्मोन्नति की, अपितु निवार्ण की प्राप्ति की थी। योगीराज कृष्ण को हम सब भली भांति जानते हैं, जिन्होनें उत्तम कोटि की संतान की प्राप्ति के लिए अनेक वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तप किया था। महर्षि मनु के अनुसार पुरुष अपनी पत्नी और संतान से मिलकर ही एक पूर्ण

सौजन्य से— RIKKI PLASTIC (PVT.) LTD.
(ISO/TS 16949:2002 Registered)
Plot No. B-5, Sector-59, Opp. JCB India Ltd., Ballabgarh, Faridabad, Haryana (INDIA)
Tele : 0129-4154941-42, Telefax : 0129-4154950

मनुष्य बनता है। कई लोगों की यह सोच है कि गृहस्थाश्रम में रहकर व्यक्ति आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता है। आत्मोन्नति करना अन्तःकरण को पवित्र करते हुए विवेक प्राप्त करना है, जिसका बाह्य संसार से अधिक सम्बन्ध नहीं है, अपितु यह आन्तरिक उन्नति है। जिस प्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी ओर संन्यासी साधना के माध्यम से अपने लक्ष्य को पा सकते हैं, उसी प्रकार से गृहस्थ भी साधना के मार्ग पर आत्मोन्नति करते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। परमेश्वर की साधना में मनुष्य के जीवन का लक्ष्य परमेश्वर को पाना या मोक्ष प्राप्त करना है। गृहस्थ संचालन के सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण देखे जाते हैं। प्रथम में व्यक्ति, मैं ओर मेरा के अहंकार में लिप्त होकर स्वार्थ की भावना से वशीभूत रहता है, दूसरे में आत्मत्याग, सेवा, प्रेम और परमार्थ की भावना से जीवन निर्वाह किया जाता है। पहला दृष्टिकोण बंधन, पतन और पाप की ओर ले जाता है। दूसरा दृष्टिकोण मुक्ति, उत्थान, पुण्य और मोक्ष मार्ग की ओर ले जाने वाला होता है। अतः गृहस्थ जीवन में रहते ही व्यक्ति यदि अपना सही मार्ग चुनता है, तो वह एक प्रकार से योग की साधना करना ही कहलाएगा।

घर के प्रत्येक सदस्य को सद्गुणी, सदाचारी और धर्मपरायण बनकर जीवन यापन करना चाहिए। धर्मपूर्वक धन की प्राप्ति करते हुए ही जीवन निर्वाह करना उसके जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। जो मनुष्य घर में रहते हुए ही एक योगी की भांति जीवन व्यतीत करना चाहता है, उसको सदा ही यह विचार मन में बनाए रखना चाहिए कि वह एक योगी है और उसका जीवन साधनामय है। दूसरे क्या करते हैं और क्या सोचते हैं, इसकी उसे तनिक भी परवाह नहीं करनी चाहिए। उसे अपनी आनन्दमयी साधना को निरन्तर जारी रखना है, यह संकल्प सदा मन में दृढ़ बनाए रखना चाहिए। ऐसे साधक को सोने से पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करते हुए आत्मावलोकन करना चाहिए। जैसे– आज मेरे व्यवहार में क्या भूलें हुईं?क्या मैंने स्वार्थ से प्रेरित होकर कोई कार्य किया?क्या सभी कार्य एक अच्छे गृहस्थ की भांति किए गए?यदि इन प्रश्नों के उत्तर में कोई आपत्तिजनक बातें पाई गईं तो अगले दिन उन पर सुधार करना चाहिए। इस प्रकार आचरण करते हुए एक दिन आदर्श जीवन चर्या प्राप्त की जा सकती है। गृहस्थ योग साधक के मार्ग में नित नई कठिनाइयां आती रहती हैं। यदि कोई ऐसी घटना हो जाती है जो आदर्शों के प्रतिकूल हो तो अपने स्वभाव पर विजय पाते हुए, ऐसी घटना दोबारा न होने पाए, ऐसा संकल्प करना चाहिए।

गृहस्थ परिवार में रहते हुए ही स्वाध्याय के द्वारा उपासना के मार्ग की ओर अग्रसर हो सकता है। शतपथकार ने स्वाध्याय के लाभों का वर्णन करते हुए एक मंत्र (11.5.7.1) में कहा है कि इससे व्यक्ति ''युक्तमना भवति'' अर्थात् समाहित मन वाला या स्थिरचित्त हो जाता है। स्वाध्याय का दूसरा लाभ है कि वह, ''अपराधीनो भवति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति किसी की पराधीनता स्वीकार नहीं करता है। वह इन्द्रियों के रूप, रस, गन्ध आदि विषयों के वश में नहीं रहता है। तीसरा लाभ है–''अहरहरर्थान् साधयते'' अर्थात् वह दिनों–दिन अर्थों की सिद्धि करता है। यहां शतपथकार का अर्थ से आशय शब्द के पीछे जो गहन अर्थ है, उसकी सिद्धि कर लेना है। चौथा लाभ है–''सुखं स्वपिति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति चैन की नींद सोता है। पांचवां लाभ है– ''परम चिकित्सक आत्मनो भवति'' अर्थात् वह अपनी आत्मा का चिकित्सक हो जाता है, वह अपने मानसिक रोगादि

विकारों की स्वयं चिकित्सा कर सकता है। छठा लाभ है– ''इन्द्रियसंयमः भवति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति इन्द्रिय संयमी हो जाता है। सातवां लाभ है– ''एकरामता भवति'' अर्थात् वह केवल एक तत्त्व परमात्मा से खेलता है। सांसारिक सभी खेलों से विमुख होकर केवल परमात्मा में ही आनन्द लेता है। आठवां लाभ है– ''प्रज्ञावृद्धिर्भवति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति पण्डित बन जाता है। नवां लाभ है– ''ब्राह्मण्यम्'' अर्थात् उसमें ब्रह्ममण्यता आ जाती है। ब्रह्ममण्यता के आने से उसमें सभी प्राणियों के हित की कामना, सर्वदुःखानुभूति, संवेदनशीलता, परोपकारिता, स्वार्थत्याग, परमतपस्विता आदि गुण स्वतः आ विराजते हैं। दसवां लाभ है– ''प्रतिरूपचर्याम्'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति वह दर्पण है जिसमें हर सद्गुण की प्रतिकृति या छाया देख सकते हैं। ग्यारहवां लाभ है– ''यशः'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति को यश की प्राप्ति होती है। बारहवां लाभ है– ''लोकपक्ति'' अर्थात् उसका लोक–परिपाक हो जाता है या उसे लोक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। तेरहवां लाभ है– ''अर्चा–बुद्धि'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति की अर्चना होती है। उसके प्रभाव से जनगण में विनय, श्रद्धा, नम्रता आदि गुण आ जाते हैं और सभी श्रद्धापूर्वक उसका आदर करते हैं। चौदहवां लाभ है– ''दानशीलता'' अर्थात् उसे दान और दक्षिणा की प्राप्ति होती है। पन्द्रहवां लाभ है– ''अज्येयतया'' अर्थात् स्वाध्याय–शीलता से व्यक्ति अज्येय हो जाता है। सोलहवां लाभ है– '' अवध्यता'' अर्थात् वह सभी के लिए अवध्य हो जाता है।

''अति ह वै पुनर्मृत्युं मुच्यते। गच्छति ब्रह्मणः सात्मताम्।'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति पुनर्मृत्यु से मुक्त हो जाता है। वह परमेश्वर के समान परान्तकाल तक जन्म–मृत्यु बन्धन से छूट जाता है। इस प्रकार एक बार के प्रयत्न से यदि उसे ब्राह्मणत्व प्राप्त हो गया तो उसका ब्राह्मणत्व मरता नहीं है और पुनर्जन्म प्राप्त करने पर वह, वहीं से कार्य आरम्भ कर देता है क्योंकि वह स्वाध्याय से ब्रह्म की सात्मता को प्राप्त कर लेता है अर्थात् वेद को आत्मसात कर लेता है, ब्रह्म (आनन्द) को आत्मसात कर लेता है। इसके लिए उपासना अत्यन्तावश्यक साधन है। यहां पर उपासना का क्या प्रयोजन है, यह जानना भी आवश्यक है।

उपासना का सही प्रयोजन–

अब हम यह विचार करते हैं कि परमेश्वर की भक्ति और उपासना क्यों करनी चाहिए। वेद में प्रभु के सम्बन्ध में स्तुति, प्रार्थना और उपासना विषयक अनेक मंत्र हैं। इस प्रकार वैदिक–धर्म प्रभु भक्ति के उपदेशों से परिपूर्ण है। जैसा कि लेख के आरम्भ में उपासना का अर्थ स्पष्ट किया गया था, उपासना का शब्दार्थ है– समीप बैठना, संगति में बैठना। इसके द्वारा हम परमेश्वर के समीप, उनकी संगति में बैठते हैं। आम साधक की दृष्टि से देखा जाए तो जो संगति का लाभ है, वही लाभ उपासना का है परन्तु महर्षि ने समस्त वैदिक साहित्य का मंथन कर मनुष्यों के लिए आवश्यक रूप से करणीय जो पंचमहायज्ञ बताए हैं, उनमें ब्रह्मयज्ञ जिसे संध्या भी कहा जाता है, उपासना हेतु महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए उसमें ध्यान लगा कर समाधि की अवस्था तक पहुंचना ही उपासना का वास्तविक प्रयोजन है।

उपासना कैसे करें–

महर्षि द्वारा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना पद्धति निम्न प्रकार बताई गई है– '' अब जिस रीति से उपासना करनी चाहिए, सो आगे लिखते हैं– जब–जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब–तब इच्छा के

अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर, अपने मन को शुद्ध ओर आत्मा को स्थिर करें। तथा सब इन्दिय और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अनतर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर, सम्यक चिन्तन करके, उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारंबार करके अपने आत्मा को भली भांति उसमें लगा दें।' इसके बाद महर्षि ने पतंजलि मुनि के योगशास्त्र और उन सूत्रों पर वेदव्यास मुनि के भाष्य के प्रमाणों का उल्लेख किया है जो संक्षिप्त रूप से निम्न प्रकार हैं–

(१) चित्त की वृत्तियों को सब बुराइयों से हटा के शुभ गुणों में स्थिर करके मोक्ष को प्राप्त करने को 'योग' कहते हैं। और 'वियोग' उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराइयों में फंस के उससे दूर हो जाना।

(२) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध से रोक देते हें, तब वह जिस ओर नीचा होता है, उस ओर चल के वहीं स्थिर हो जाता है, इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है, तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है। एक तो चित्त की वृत्ति को रोकने का यह प्रयोजन है।

(३) उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं, तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्षशोकरहित, आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्दयुक्त रहती है और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्षशोकरूप दुःखसागर में डूबी रहती है। उपासक योगी की तो ज्ञानरूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फंसती जाती है।

(४) सभी मनुष्यों में पांच प्रकार की वृत्तियां क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से होती हैं। ये वृत्तियां हैं– प्रमाण, विपर्य्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इन वृत्तियों को अभ्यास और वैराग्य अर्थात् सब बुरे कामों और दोषों से अलग रहकर ही इन्हें रोक कर उपासना योग में प्रवृत्त हुआ जा सकता है।

ब्रह्मयज्ञ या संध्या नित्य सांय और प्रातः सभी श्रेष्ठ जनों द्वारा किया जाना आवश्यक है। इसमें भी केवल मंत्र पाठ और अर्थ पर विचार तक ही सीमित न रहना चाहिए अपितु महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा बताए गए उक्त योग मार्ग पर चलना भी अत्यन्त आवश्यक है। कुछ समय मौन रह कर आत्मा और परमात्मा के गुणों का चिन्तन करते हुए ध्यान लगा कर यदि सम्भव हो सके तो समाधि अवस्था तक पहुंचने का प्रयास करना चाहिए। साधना के इस मार्ग पर चलने के लिए गृहस्थ को घर से बाहर अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है, अपितु घर के वातावरण को ही शुद्ध व पवित्र बनाते हुए उपरोक्त समस्त प्रक्रियाओं को पूर्ण किया जा सकता है। यह भी उल्लेखनीय है कि सामान्य साधकों के लिए बिना किसी गुरु का सानिध्य प्राप्त किए उपासना के इन कठिन मार्गों पर चलने में कठिनाइयां आ सकती हैं। इसके लिए समय–समय पर आर्यसमाज द्वारा संचालित कई संस्थानों और हिन्दू धर्म की अन्य संस्थाओं के द्वारा भी साधकों के मार्गदर्शन हेतु शिविर लगा कर प्रशिक्षण दिया जाता है। साधक इन स्थलों पर सप्ताह या उससे अधिक समय तक रहकर उपासना का सही तरीका अपना सकते हैं। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गृहस्थ में ही हम एक योगी की भांति जीवन बिताते हुए मोक्षमार्ग पर आरूढ़ हो सकते हैं।

‘वैदिक मान्यतायें ही धर्म व इतर विचारधारायें मत–पन्थ–सम्प्रदाय’

—मनमोहन कुमार आर्य

धर्म शब्द की उत्पत्ति व इसका शब्द का आरम्भ वेद एवं वैदिक साहित्य से हुआ व अन्यत्र फैला है। संसार का सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है। वेद ईश्वर प्रदत्त वह ज्ञान और सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। यह ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में इस संसार के रचयिता परमेश्वर वा सृष्टिकर्त्ता से चार आदि ऋषियों अर्थात् मनुष्यों को मिला था। परमात्मा ने वेदों का ज्ञान क्यों दिया और इस बात का क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है?वेदों का ज्ञान परमात्मा ने दिया है, इसका प्रमाण यह है कि ज्ञान व विज्ञान का धारक व पालक संसार में एकमात्र ईश्वर है, अन्य कोई नहीं है। मनुष्यों को सीखना पड़ता है। यह उन्हीं से सीख सकता है जो पहले से कुछ सीखे हुए होते हैं। अब प्रश्न होता है कि सृष्टि के आरम्भ में जो मनुष्य उत्पन्न हुए उनको सिखाने वाला कौन था?इसका उत्तर एक ही है कि वह इस सृष्टि की रचना करने वाला ईश्वर ही था। उसने ज्ञान, विज्ञान व अपनी सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमतता से इस समस्त अनन्त संसार को पूर्व कल्प के अनुसार रचा है। मनुष्य को आँख, नाक, कान, जिह्वा व त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियां भी उसी ने अपने ज्ञान, विज्ञान, सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमतता के गुण से ही बनाकर मनुष्यों को प्रदान की हैं। मनुष्य सृष्टि के आरम्भ काल में जब प्रथम उत्पन्न हुआ तो उसका पालन करने के लिए माता व पिता तथा ज्ञान व शिक्षा देने के लिए गुरु, अध्यापक व आचार्य संसार में नहीं थे। उत्पन्न हुए सभी युवा स्त्री–पुरुष भाषा व ज्ञान से शून्य थे क्योंकि बिना पढ़े कोई ज्ञानी नहीं हो सकता अर्थात् जन्म से ही कोई भी मनुष्य भाषा व ज्ञान से युक्त नहीं होता। मनुष्यो को भाषा सीखनी पड़ती है। पहले माता–पिता व बाद में विद्यालय मे आचार्य व गुरु भाषा सिखाने के साथ ज्ञान व विज्ञान पढ़ाते हैं। संसार के आरम्भ में माता–पिता व आचार्यों के न होने के कारण एक ईश्वरीय सत्ता ही बचती है जिनसे मनुष्य को भाषा व ज्ञान प्राप्त होता व हो स**कता है। यह इस कारण से आदि सृष्टि के मनुष्यों को भाषा व धर्माधर्म का ज्ञान ईश्वर से मिलना ही प्रमाणित तथ्य है। इसका अन्य कोई उत्तर नहीं है। ईश्वर से मनुष्यों को ज्ञान मिलना युक्तियुक्त है तथा अन्य सभी कल्पनायें व अनुमान दोषपूर्ण प्रतीत होते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी व सर्वज्ञ सत्ता होने के कारण जीवात्मा की आत्मा में ही ज्ञान को भाषा सहित स्थापित करती है व देती है। ज्ञान भाषा में ही निहित है, अतः ज्ञान के साथ भाषा का मिलना भी सुनिश्चित है। आजकल भी सम्मोहन द्वारा प्रेरणा करके ज्ञान के उदाहरण मिलते हैं। बहुत से लोग इस विद्या को सीख लेते हैं और इसी से अपनी आजीविका चलाते हैं। ईश्वर तो जीवात्मा के भीतर भी विद्यमान और सर्वज्ञ है तो वह जीवात्मा को आत्मस्थ होने से प्रेरणा क्यों नहीं कर सकता? यह सर्वथा सम्भव है। हम जानते हैं कि माता का गर्भस्थ शिशु माता के व्यवहार के अनुरूप गुण–कर्म–स्वभाव वाला बनता है। इसका**

कारण है कि गर्भ में होते हुए जबकि उसका शरीर निर्माणाधीन होता है वह अपनी माता के आचार, विचार, भाषा व भोजन आदि से प्रभावित होता रहता है। जन्म के बाद माता की गोद में वह स्वयं सुरक्षित अनुभव करता है और शान्त रहता है जबकि अन्य किसी के लेने पर वह प्रायः रोना आरम्भ कर देता है। यह भी एक प्रकार का विज्ञान है जिससे पता चलता है कि माता के साथ बच्चे का तादात्मय अर्थात आत्मा का आत्मा के साथ वाला सम्बन्ध होता है। शरीर से पृथक होने पर भी दोनों आत्मा से आबद्ध रहते हैं। अतः सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर का वेदों का ज्ञान देना सत्य सिद्धान्त है। वेदों की संहितायें, उनके संस्कृत व हिन्दी भाषा में भाष्य तथा वेदों के अनेक व्याख्या ग्रन्थ 4 ब्राह्मण ग्रन्थ, 6 दर्शन, 11 मुख्य उपनिषदें, मनुस्मृति आदि ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध हैं। इनका अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मनुष्य को जितना सत्य–सत्य ज्ञान आवश्यक है वह चार वेदों में सृष्टि के आदि काल से ही विद्यमान है। **सभी प्राचीन ऋषियों से लेकर महर्षि दयानन्द तक ने वेदों को सब सत्य विद्याओं का कोष व ग्रन्थ स्वीकार किया है। वेद में आध्यात्म के साथ सभी भौतिक विद्याओं का भी सूत्र रूप में समावेश है। इसका सविस्तार उल्लेख महर्षि दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ में किया है। अतः वेद ज्ञान–विज्ञान सहित कर्तव्याकर्तव्य वा धर्माधर्म के ग्रन्थ सिद्ध होते हैं। धर्म उस ज्ञान को ही कहते हैं जिससे मनुष्य को अपने कर्तव्य व अकर्तव्य का बोध होता है व जिसका पालन करने से अभ्युदय व निःश्रेयस की सिद्धि हो। क्या वेदों में व वैदिक साहित्य में कहीं किसी मान्यता व सिद्धान्त की कोई कमी थी जिसकी देश–देशान्तर के किसी मनुष्य ने अनुसंधान व खोज की हो जिसने अधूरे वेद ज्ञान को पूर्णता प्रदान की हो? जब ऐसा कोई सन्दर्भ व प्रमाण किसी मत व पन्थ में उपलब्ध नहीं होता और न वह इसका दावा ही करते हैं तो फिर विश्व के मनुष्यों के लिए किसी नवीन मत की आवश्यकता ही नहीं रहती। मनुष्य के सभी कर्तव्य व अकर्तव्य वेदों व महाभारत के पूर्व काल के वैदिक साहित्य में सर्वांगपूर्ण रूप से विद्यमान होने के कारण वेद अपने आप में पूर्ण मनुष्य जाति का धर्म है। वेदों की वर्तमान समय में विद्यमानता के कारण मनुष्यों के लिए किसी नये मत की आवश्यकता ही नहीं है। वेद धर्म ईश्वर द्वारा प्रादूर्भूत धर्म है और सभी मनुष्यों के लिए यही धर्म आचरणीय व कर्तव्य है। हमारे मनुस्मृति, उपनिषद्, दर्शन, रामायण, महाभारत व अन्य जितने भी ग्रन्थ हैं उनमें धर्म शब्द का प्रयोग वेद के सिद्धान्तों के आचरण करने से ही सम्बन्ध रखता है। वेदों का धर्म सर्वथा पूर्ण धर्म है। यही कारण है कि सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक और महाभारत काल के भी बहुत बाद तक वैदिक धर्म ही भारत सहित विश्व का एकमात्र धर्म रहा है। महाभारत काल तक अन्य किसी धर्म के अस्तित्व का उल्लेख व विवरण विश्व के साहित्य में उपलब्ध नहीं है।** महाभारत काल के बाद संसार में अनेक मत–मतान्तर जिन्हें रिलीजन, मजहब, सम्प्रदाय व पन्थ भी कह सकते हैं, अस्तित्व में आये। कारणों पर विचार करने पर ज्ञात होता है कि महाभारत के महायुद्ध के बाद आलस्य व प्रमाद के कारण वैदिक धर्म व वैदिक सामाजिक व्यवस्था विशृंखलित हो गई। समयानुसार जैमिनी ऋषि पर आकर ऋषियों की परम्परा भी समाप्त हो

गई और वेदों के पारदर्शी विद्वानों की संख्या भी नगण्य हो गई। विश्व में वेदों का प्रचार बन्द हो गया। देश के अल्पज्ञानी विद्वान् मनमानी करने लगे और सर्वत्र अल्पज्ञता से पूर्ण नये–नये अवैदिक विधान दिखाई देने लगे। अन्धकार बढ़ता गया और कुछ अच्छे आशय वाले सज्जन पुरुषों ने देश व विदेश में समाज के हित की दृष्टि से अपनी–अपनी योग्यता व क्षमता के अनुसार लोगों को अपने मत में संगठित व दीक्षित किया। यह सभी लोग वेदों के ज्ञान से परिचित नहीं थे। उन लोगों के सम्मुख वेदों का पुराना आचार, विचार व व्यवहार ही अनेकों विकृतियों के साथ प्रचलित था। उन्हें जो उचित लगा उन्होंने प्रचलित किया और उन–उन के नये मत, पन्थ, सम्प्रदाय ही प्रचलित होकर विस्तार को प्राप्त हुए। अनेकों प्रकार के चमत्कार आदि भी इन वेदेतर नये मतों के अनुयायियों ने समय–समय पर अपने–अपने मत में मिला लिए। नये मतों की संख्या समय व स्थान के अनुसार वृद्धि को प्राप्त होती रही। यह मत व पन्थ धर्म न होकर मत, पन्थ, रिलीजन, मजहब व सम्प्रदाय आदि श्रेणी में आते हैं। भारत से इतर मत व पन्थ जिस भाषा का प्रयोग करते हैं उन भाषाओं में धर्म, नाम का शब्द भी नहीं है। धर्म वेद, वैदिक साहित्य व संस्कृत का शब्द है। अन्य मतों की अपनी–अपनी भाषायें होने से उनके अपने–अपने शब्द हैं, उन्हीं से उनको सम्बोधित किया जाना चाहिये। भारत में यह कुछ फैशन सा हो गया हे कि देशी व विदेशी सभी मतों व पन्थों को धर्म मान लिया गया है जिससे यथार्थ व सदधर्म वैदिक धर्म के बारे में अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैल गई हैं। वैदिक धर्म जो कि वेद व वेदानुकूल वैदिक साहित्य पर आधारित है और युक्ति, तर्क व प्रमाणों पर आधारित जो सत्य मान्यतायें व सिद्धान्त है, वही वैदिक धर्म है। इससे इतर देश व विश्व में जितने भी मत व सम्प्रदाय हैं वह धर्म न होकर, मत–पन्थ–सम्प्रदाय रिलीजन/मजहब आदि श्रेणी में ही आते हैं और उनके लिए उनकी भाषाओं के उपयुक्त शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये। हमारा इस लेख को लिखने का अभिप्राय यही है कि सत्य, सनातन, ईश्वर प्रदत्त वेद व इसकी शिक्षाओं, मान्यताओं, सिद्धान्तों व विधानों का पालन ही वैदिक धर्म है। इससे इतर, विपरीत, सत्यासत्य मिश्रित आध्यात्मिक व सामाजिक मान्यतायें धर्म नहीं हैं। जो सिद्धान्त व मान्यतायें वेद, ज्ञान व पूर्ण सत्य के अनुरूप व अनुकूल है, वह वैदिक धर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं। वैदिक मत से इतर मान्यता व सिद्धान्तों वाले सभी संगठन व समुदाय मत व पन्थ की ही श्रेणी में आते हैं। अतः सुधी व विज्ञ लोगों को वेद से इतर मत–पन्थों के लिए धर्म का प्रयोग न कर उनके लिए उचित व यथार्थ शब्दों का ही प्रयोग करना चाहिये जिससे धर्म विषयक यथार्थ स्थिति का सबको ज्ञान रहे। धर्म संस्कृत भाषा का शब्द है और इसका प्रयोग मनुस्मृति, दर्शन, उपनिषद्, रामायण व महाभारत आदि ग्रन्थों में वेद मत व वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों के लिए ही हुआ है। इस स्थिति को जान व समझकर ही सभी मनुष्यों को धर्म शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

वर की आवश्यकता

चौहान जाति की एम.एससी. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण, एस.बी.आई बैंक, ऋषिकेश में मैनेजर पद पर कार्यरत, आयु 32 वर्ष, हाईट 5'–1'' के लिए योग्य वर चाहिए। पिता केन्द्रीय सेवा से सेवानिवृत क्लास–1 अधिकारी तथा राष्ट्रीय स्तर के आर्य विद्वान एवं लेखक। कृपया दहेज के इच्छुक तथा जन्मपत्री में विश्वास करने वाले व्यक्ति सम्पर्क न करें। **सम्पर्क सूत्र : 9412985121**

ई–मेल : manmohanarya@gmail.com

माता–पिता बच्चों को सदा उत्तम शिक्षा दें

–विवेकानन्द शास्त्री

जब पाँच–पाँच वर्ष के लड़का–लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता–पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे–कैसे वर्त्तना इन बातों के मंत्र, श्लोक, सूत्र, गद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवे और जो–जो विद्याधर्म विरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत–प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्।
प्रेतहारैः समं तत्र दशराप्वेण शुद्धयति।।

अर्थ–जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतकशरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है। और जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था। जितने उत्पन्न हो, वर्त्तमान में आके न रहें, वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मा से, लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है परन्तु जिसको शंका, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं।

देखो! जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख–दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है। क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है? अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र का पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं। उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भंगी, चमत्कार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र–यन्त्र बाँधते–बँधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते फिरते हैं। जब आँख के अँधे और गाँठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि महाराज! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है? तब वे बोलते हैं कि इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो तो मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें। तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व ले लो परन्तु इनको अच्छा कर दीजिए। तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त कहते हैं, अच्छा, लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ। झांझ, मृदंग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूद के कहता है मैं इसका प्राण ही ले लूंगा। तब वे अन्धे उस भंगी, चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं आप चाहें सो लीजिये इसको बचाइये। पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट। मैं

देवी का भैरव हूँ लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र। जब वे कहते हैं कि जो चाहो सो लो तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट पाँच जूता, दंडा वा चपेटा, लातें मारे तो उसके हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है और जब किसी ग्रहग्रस्त ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं—हे महाराज! इसको क्या है? तब वे कहते हैं कि इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं, वो तुम इनकी शान्ति पाठ, पूजा, दान कराओ, तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं।

कहिये ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकेंगे?

प्रश्न— क्या जो यह संसार में राजा—प्रजा सुखी—दुःखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं?

उत्तर— नहीं ये सब पाप पुण्यों का फल है।

प्रश्न— तो क्या ज्योतिषशास्त्र झूठा है?

उत्तर— नहीं जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची है, जो फल की लीला है वह सब झूठी है।

प्रश्न— क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है?

उत्तर— हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम शोकपत्र रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सबको आनन्द होता है परन्तु यह आनन्द तब तक होता है जब तक जन्मपत्र बन के ग्रहों का फल न सुने। जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता—पिता पुरोहित से कहते हैं। महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्री बनाइये। जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाने को आता है। तब उसके माँ—बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं इसका जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है। इसका जन्मपत्र अच्छा तो है? ज्योतिषी कहता जो है सो सुना देता हूँ। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं। जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान् जिस सभा में जा बैठेगा तो सबके ऊपर इसका तेज पड़ेगा। शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा। इत्यादि बातें सुन के पिता आदि बोलते हैं। वाह ज्योतिषी जी आप बहुत अच्छे हैं। ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने—फलाने ग्रह के योग से 8 वर्ष में इसका मृत्युयोग है। इसको सुन के माता—पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोक सागर में डूब कर ज्योतिषी से कहते हैं उपाय करो, गृहस्थ पूछे क्या उपाय करें। ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि ऐसा—ऐसा दान करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे। अनुमान शब्द इसलिए है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है। हमने तो बहुत—सा यत्न किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो—हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है? तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहाँ पर बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुणे रुपये उन धूर्तों से ले लेने चाहिये और बच जाय तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं वैसे गृहस्थ भी कहें कि यह अपने कर्म और परमेश्वर के

नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले लेते हैं जो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग चलाते हैं। कोई कहता है कि जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते। उनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहाँ हमारी दाल नहीं गलेगी। इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिये।

इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था में ही सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें।

सूली से मुक्ति

एक बार महाराज जनक के मंत्री ने उन से पूछा, "महाराज! देह होते हुये भी आपका विदेह नाम क्यों है?" महाराज ने कहा, "इसका उत्तर हम तुम्हें कुछ दिवस के बाद देंगे।" जब कुछ दिन व्यतीत हुए तो महाराज ने एक दिन उस मन्त्री को भोजन का निमन्त्रण दिया। उन्होंने बिना नमक वाला भोजन बनवाया। मन्त्री के भोजन करने के प्रथम ही यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि "आज चार बजे मन्त्री को फाँसी दी जायेगी।' ढिंढोरा पीटने वाले से कहा कि मन्त्री के द्वार पर तीन आवाजें लगाये। जिस में मन्त्री सुन लें। ऐसा ही हुआ।

दो बजे महाराज जनक ने उसे भोजन के निमित्त बुलाया। बड़े आदर से ले जाकर भोजन कराया। जब मन्त्री भोजन करके निकला तब महाराज जनक ने कहा, "मन्त्री जी! यदि आप हमें यह बता दें कि किस–किस भोजन में कैसा–कैसा लवण था तो मैं आपको सूली से मुक्त कर दूँ।"

मन्त्री ने उत्तर दिया कि, "महाराज! मुझे मौत के भय से यह ज्ञान नहीं रहा कि किसमें लवण है या किसमें नहीं है। मैं कैसे बताऊँ?" जनक ने मन्त्री से कहा, "सुनिये, आपकी सूली का समय चार बजे था और दो बजे आप भोजन करने बैठे थे। यानी भोजन के समय से मौत के समय तक दो घण्टे जीवन की पूर्ण आशा थी फिर भी आपको लवण का ज्ञान शरीर, स्मणशक्ति, जिह्वा और ज्ञान आदि के होते हुए भी न रहा फिर मुझे तो एक मिनट के लिए भी जीवन का भरोसा नहीं। न जाने कब साँसें अट जाएं। बस जैसे तुम दो घण्टे का समय और देह होते हुये भी विदेह हो गये, इसी प्रकार मिनट भर की भी जीवन की आशा नहीं करता हुआ मैं सदैव विदेह रहता हूँ।"

फल–जो मनुष्य पल भर के लिए जीवन पर भरोसा नहीं करता वह संसार में रहते हुए भी संसार में नहीं रहने के समान है।

मानवीय समाज में पड़ोसियों से मधुर सम्बन्ध रखने के लाभ व हानियाँ

–आचार्य भगवानदेव वेदालंकार

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बिना मनुष्य के समाज नहीं बन सकता और बिना समाज के मनुष्य नहीं रह सकता। इसलिए समाज–सेवा मनुष्य का परम कर्तव्य है। "मानव की सेवा" श्रेष्ठ ईश्वर भक्ति है। डॉ. सम्पूर्णानन्द जी के शब्दों में– "संघर्ष की भावना को प्रश्रय न देकर, मनुष्य के उदात्त गुणों को जगाना ही समाज की सेवा है।"

पास–पड़ौस का स्वरूप– हमारे आस–पास अर्थात् पड़ोस में, जो लोग रहते हैं अथवा बसते हैं, उनको भी हम समाज के रूप में ही देखते हैं। पड़ौसी–समाज का हम पर कई प्रकार के गहरा प्रभाव पड़ता है। कभी–कभी पड़ौस में "असभ्य, क्रूर, अनैतिक, अशिक्षित तथा अन्धविश्वासी" स्वभाव का समाज, देखने को मिलता है जैसे–एक बार कबीरदास जी के जीवन की एक ऐसी ही घटना सुनने को मिलती है। कोई व्यक्ति कबीरदास जी के गन्दे पड़ौस को लक्ष्य करके पूछता है–

"कबीरा तेरी झौंपड़ी गलकटियन के पास"

अर्थात् हे कबीर! आपका पड़ौसी कसाई है। आप वहाँ कैसे गन्दे पड़ोस में रहते हो? कबीरदास जी अपने पड़ौसी से बिना भयभीत हुए, अपनी स्पष्ट वाणी में, सरलता, सज्जनता से उत्तर देते हैं–

"जो जैसा करेगा, वैसा भरेगा तू क्यों भया उदास"
निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटि छवाय।
बिना पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुहाय।।

हम देखते हैं कि पास–पड़ोस का समाज सुख–दुःख का संगम है। मानव–समाज में अनेक प्रकार की विषमतायें हैं। कहीं कष्ट है, पीड़ा है, दुःख है, अशान्ति है, असन्तोष है, अत्याचार है, भ्रष्टाचार है, वेदना है, अभाव है, अशिक्षा है। वहीं सभ्य–समाज में शान्तिपूर्ण जीवन की समरसता भी है। सहयोग, सहानुभूति और परोपकार की भावना है।

भगवान् की सृष्टि में महान् पुरुषों का आदर्श

भगवान् की इस सृष्टि में अनेक प्रकार के स्वभाव के लोग दृष्टिगोचर होते हैं जैसे–कुछ लोग ऐसे महान् हुए हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन ही दूसरों की सेवा में, समाज–सुधार में, परोपकार में लगा दिया। आगे आने वाली सन्तानों के लिए अनुकरणीय उच्चादर्श प्रस्तुत किया। शंकराचार्य ने ३२ वर्ष की अल्पायु में वैदिक–संस्कृति की रक्षा की, समाज के हित के लिए देश के चारों कोनों में चार मठ स्थापित किये। वेदों के महान् आचार्य, स्वामी दयानन्द जी ने ५९ वर्ष की अल्पायु में ही अविद्या, अज्ञानता, अन्धविश्वासों का नाश किया और वैदिक–संस्कृति की पुनःस्थापना की। राजा राम मोहन राय ने सती–प्रथा बन्द करवाने का यज्ञ किया। स्वामी रामतीर्थ, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और अरविन्द ने वैदिक मान्यताओं की प्रतिस्थापना में अद्भुत सहयोग दिया। किसी कवि ने सत्य ही कहा है–

"महान पुरुषों के आदर्श ही हमको, यह बतला रहे।

अनुकरण कर मार्ग उनका, उच्च बन सकते सभी।
कालरूपी रेत पर चिह्न जो तज जायेंगे।
आदर्श उनको मानकर आगन्तुक ख्याति पायेंगे।

पड़ोसियों के मधुर सम्बन्ध रखने के लाभ–

मानव–जीवन में ''पड़ोसी–समाज'' का बड़ा महत्व है। मनुष्य जब किसी नये स्थान पर बसने जाता है। अपना मकान रहने के लिए बनाता है, तब उसके मन में यह विचार अवश्य प्रकट होते हैं कि मेरा पड़ोसी कैसा होगा? उसका मेरे साथ कैसा सम्बन्ध होगा? वह अच्छा होगा। मेरा उनके प्रति मधुर सम्बन्ध होगा क्योंकि पड़ोसियों से मधुर सम्बन्धों के अनेकों लाभ हैं, जैसे–

(1) सबसे पहले सुख और दुःख में पड़ोसी ही काम आता है।

(2) हमारे मधुर–व्यवहार से पड़ोसी हमारा प्रशंसक बन जाता है।

(3) तीसरे पड़ोसी की ''मदद एवं प्रत्येक प्रकार की सहायता एवं सहयोग'' हमें प्राप्त होता है।

(4) चौथे हमारी ''संगठन–शक्ति'' बढ़ जाती है।

(5) पांचवे पड़ोसियों के सहयोग एवं सद्भावना से परिवार में विवाह, शादी, नामकरण एवं प्रीतिभोज आदि कार्य आसानी से सफल हो जाते हैं।

(6) छठे शत्रु–पक्ष, चोर–डाकू, आतंकियों पर दबाव बना रहता है। वे भयभीत रहते हैं।

(7) सातवें पड़ोसियों के मधुर–सम्बन्धों के कारण साहस, हिम्मत, निर्भयता एवं आवश्यकताओं की पूर्ति आसानी से बनी रहती है।

पड़ोसियों से मधुर–सम्बन्ध न रखने से हानियां–पड़ोसियों से यदि मधुर–सम्बन्ध न हों तो उसकी अनेक प्रकार की हानियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे–

(1) प्रथम पड़ोसी को एक दूसरे पड़ोसी की कमजोरी की जानकारी होती है, वह हमारी कमजोरी का कभी भी दुरुपयोग कर सकता है।

(2) दूसरे पड़ोस में कटुता होने से घर–परिवार में अशान्ति तथा असन्तोष का वातावरण बन जाता है।

(3) तीसरे हमारी शक्ति, धन और बल क्षीण होने का भय बना रहता है।

(4) चौथे शत्रु–पक्ष, चोर–डाकू, लुटेरे और आतंकियों का उत्साह बढ़ जाता है। वे हमें हानि पहुँचा सकते हैं।

(5) पांचवे पड़ोसियों की कटुता से मधुर सम्बन्धों में कड़वाहट, ईर्ष्या, द्वेष तथा हानि पहुँचाने की भावना बलवती होती है।

स्वामी दयानन्द जी का उच्च आदर्श

महान शिक्षा शास्त्री आचार्य दयानन्द ने आर्य समाज के सातवें और नौवें नियम में लिखा है कि

(1) ''सबसे प्रीतिपूर्वक यथायोग्य वर्तना चाहिए''

(2) ''प्रत्येक को अपनी उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए''

अतः उपरोक्त से यह सारांश निकलता है कि हमें अपने पड़ोसियों के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने का सदैव प्रयास करना चाहिए।

परिवार के झगड़े टाले जा सकते हैं

—गोपालभिक्षु

आज तो घर–घर में लड़ाई–झगड़े हो रहे हैं। सभी झगड़ों को निपटाया भी जा सकता है और टाला भी जा सकता है। एक सरपंच के पास अपने झगड़े निपटाने के लिये बहुस से लोग आते थे। एक बार बहुत दूर से दो आदमी आये उनको घर का पता नहीं था। गांव के खेत में चार नौजवान हल चला रहे थे। उनसे सरपंच के घर का पता पूछा तो उन्होंने कहा कि सरपंच का घर तो अगले मुहल्ले में है परन्तु वह किसी की बात तो सुनते नहीं जाना बेकार है। उन लोगों को बड़ा अचम्भा हुआ फिर भी वह आगे बढ़े। एक कुएं पर चार नौजवान स्त्रियां दिखाई दीं वह पानी भर रही थीं। उनसे सरपंच के घर का पता पूछा तो नौजवान स्त्रियों ने कहाँ कि घर तो वह सामने है पर उनको कुछ भी दिखाई नहीं देता। अब एक और आश्चर्य की बात हो गई। वह आदमी घर की तरफ बढ़े और घर के अन्दर दाखिल होने लगे तो एक बूढ़ी माता बैठी थी उससे पूछा तो उत्तर मिला वह तो मर गये हैं अब और भी आश्चर्य हुआ। फिर वह घर के अन्दर दाखिल हो गये तो सरपंच बिल्कुल ठीक थे और झगड़े निपटा रहे थे। उन व्यक्तियों ने सारी बात सुनाई तो सरपंच ने कहा कि खेत में जो चार नौजवान थे वह मेरे लड़के थे। वह कोई न कोई झगड़ा मेरे पास ले आते हैं तो मैं अब अनसुनी कर देता हूँ इसलिये वे कहते हैं कि मैं सुनता नहीं हूँ। और पानी भरती हुई चार स्त्रियाँ मेरी चार बहूरानियां हैं वह भी अपने घर के झगड़े लेकर आती हैं तो मैं टालता रहता हूँ इसलिये वह कहती हैं कि मुझे दिखाई नहीं देता और दरवाजे पर जो बूढ़ी बैठी है वह बहू और बेटों से लड़ती रहती है और मुझे उनसे लड़ाना चाहती है इसलिये मेरी पत्नी कहती है कि तू मेरे लिये मरा हुआ है। तो परिवार के झगड़े निपटाने का और टालने का यही एक तरीका है। इसलिये महापुरुषों ने कहा कि अच्छे काम को तुरन्त कर डालो और बुरे काम को टालते रहो याद रखो अगर आप राष्ट्र की सेवा करना चाहते हो तो पहले अपने परिवार की सेवा करो। भाइयों में ऐसा ही प्यार होना चाहिये जैसे भगवान राम और लक्ष्मण तथा भरत में था। पति पत्नी का प्यार सीता और राम जैसा होना चाहिये इसलिये परिवार में एक दूसरे की गलती को बरदाश्त करें और माफ करें।

देह में खुजली

एक सूरदास किसी बड़े भारी मकान के भीतर चला गया। अब बेचारे को बाहर निकलने का मार्ग मिलना कठिन हो गया। परन्तु उसने एक युक्ति सोची कि यदि दीवार पकड़े–पकड़े इसके सहारे मैं चलूँ तो, दरवाजा अवश्य मिल जायगा। उसने ऐसा ही किया, परन्तु दीवार पकड़े–पकड़े जब भी वह दरवाजे के सामने आता था तभी उसकी देह में खुजली उठ आती थी। तब वह दोनों हाथों से दीवार का सहारा छोड़, देह खुजलाने लगता था, इस भाँति एक बार नहीं वरन सैकड़ों वार दरवाजा निकल गया और वह यों ही हाथ मींजता रह गया।

फल—मनुष्य शरीर को पाकर विषयरूपी खुजली में लिप्त न हो, नहीं तो मुक्तिद्वार नहीं मिलेगा।

कर्म के स्वरूपों का दिग्दर्शन

–शिवदेव आर्य

कर्म शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है। कर्म शब्द का अर्थ 'करना' है। इसको अभिव्यक्त करने के लिए कर्म, कृत्य, कार्य, क्रिया, व्यापार इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

मन, बुद्धि, वाणी एवं शरीर से जो भी क्रियाएँ की जाती हैं, वह सब कर्म के ही अन्तर्गत आती है। कर्म ही विश्व का आधार है। यह चराचर जगत यदि विद्यमान है तो वह कर्म से ही है। जीवन का मुख्य स्रोत कर्म ही है, क्योकि प्राणी का जन्म कर्म के आधार पर होता है। जन्म, फल एवं मरण सब कुछ कर्म से ही प्राप्त होता है।

हमारा जो वर्तमान जीवन है, वह अतीत के कर्मों पर आधारित है एवं जो आगामी जीवन है, वह वर्तमान के कर्मों पर आधारित होगा। यदि हम वर्तमान में अपने को दुःखी पाते हैं तो निश्चित है कि ये फल हमारे द्वारा किए गए भूत के अशुभ कर्मों के हैं और यदि सुखी हैं तो निश्चित है कि ये फल हमारे द्वारा किए गए भूत के शुभ कर्मों के हैं। प्रत्येक प्राणी अपने भाग्य का निर्माता स्वयं ही होता है क्योंकि जीव के द्वारा किए गए कर्म संस्कारों के रूप में संचित रहते है और अग्रिम फल के कारण बनते हैं। उनका फल जीव को अवश्य भावी रूप से भोगना पड़ता है। क्योंकि गीता में भी श्रीकृष्ण जी महाराज ने कहा है कि – ''अवष्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्मशुभाशुभम्''

वेदान्त दर्शन में भी कर्म फल के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। वेदान्तदर्शन का मानना है कि मनुष्य जो भी कुछ करता है, उसे कर्म कहते हैं, इसे 'अनुशय' भी कहा गया है, जो प्रभाव उसके अन्तःकरण पर पड़ते हैं, वो कर्म है। ये संस्कार इस जन्म के भी होते हैं और पूर्व जन्मों के भी। ये मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं–

१. प्रारब्ध कर्म। २. संचित कर्म। ३. संचीयमान कर्म।

१. **प्रारब्ध कर्मः** ये वे कर्म हैं, जिनके विषय में जन्म के आरम्भ में ही यह निश्चित हो जाता है कि ये कर्म इसी जन्म में ही फलीभूत होंगे।

२. **संचित कर्मः** जो कर्म पिछले जन्मों में किये गये हैं उन कर्मों का फल इस जन्म में प्राप्त होता है तो उस कर्म को संचित कर्म कहते है।

३. **संचीयमान या आगमिक कर्म** : वासनाएँ सम्भवतः फल प्राप्ति के लिए अन्तःकरण के द्वारा किए गए निश्चय हैं, जो इच्छाओं में परिणत हो जाते हैं। मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक कर्म में इन वासनाओं द्वारा निर्देशित होता है। इस विषय में शंकराचार्य जी भी लिखते है कि– 'विश्व में नाना प्रकार की जो विषमताएँ दिखलाई देती हैं, वे जीव के संचित कर्मों का ही परिणाम हैं क्योंकि ईश्वर जीव के संचित कर्म अथवा भाग्य के अनुसार ही उसे जन्म देता है।

ऋग्वेद में कर्म को 'क्रतु' शब्द से व्यक्त किया गया और क्रतु यज्ञ का वाचक माना जाता है और यज्ञ का अर्थ श्रेष्ठ है अर्थात् इससे सिद्ध होता है कि श्रेष्ठ कर्मों को करने वाला श्रेष्ठ होता है। कर्म की श्रेष्ठता को वेदों में लगभग ११० बार अभिव्यक्त किया गया है।

वेदों के ऋषियों ने देवताओं के कर्मों के आधार पर महिमा वर्णन किया। ऋग्वेद में एक स्थान पर आता है कि–'यः कर्मभिमहद्भिः सुश्रुतोऽभूत्' अर्थात् इन्द्र अपने कर्मों के करने से ही प्रसिद्ध है। इसी प्रकार वृक्ष, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि के कर्मों के बारे में वेदों में विस्तृत वर्णन दिया गया है।

जैसे कर्म करने वालों की वेदों में महिमा का वर्णन है वैसे ही न कर्म करने वालों की भी निंदा की गई है। ऋग्वेद में अकर्म पुरुष को 'अकर्मः दस्युः' के नाम से सम्बोधित किया है अर्थात् कर्म न करने वाला दस्यु है।

अब प्रश्न यह होता है कि कर्म कैसा किया जाए? तो वेदान्त के अनुसार यम–नियमों का पालन करते हुए शुभकर्मों को करना चाहिए।

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन् यथाशक्ति प्राप्नोति परमां गतिम्।।

इस कारिका की व्याख्या करते हुए मेधातिथि जी लिखते है कि – 'वेद मूलत्वात् स्मृतीनां वेदोदितमिति श्रूयते। स्वकं कर्म वक्ष्यमाणो व्रत समूहः। विहितत्वात् स्वकमित्युच्यते। नित्यं कुर्यात् यावज्जीवम् अतन्द्रितोऽनलसः। एतद् व्रतधारणं कुर्वन्यथाशक्ति अनेन सत्यां शक्तौ यथा सम्भवमनुष्ठानमाह। तदुक्तम्–'मनसा वा तत्समग्रमाचारमनुपालयन्' परमां गतिं ब्रह्मत्वप्राप्तिरूपम्।

अर्थात् प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति अपने आलस्य को छोड़कर नित्यप्रति वेदोक्त कर्म करे। वेदोक्त सत्कर्म के बिना मनुष्य, मनुष्य नहीं कहलाता और सत्कर्मों से ही उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन्ही कर्मों को महर्षि पतंजलि जी ने यम और नियम के रूपों में प्रतिपादित किया है तो पूर्व यमों के बारे में जानने का प्रयास करते हैं। यम पाँच प्रकार के होते है –

'हिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः'

१. अहिंसाः– 'अहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः' –योगदर्शन–२.३०

प्राणनाश जैसा संकट होने पर भी तन, मन, तथा वचन से समस्त जड़, चेतन प्राणियों के साथ शत्रुता न करना अहिंसा है अर्थात् सब प्रकार से, सबकाल में, सब प्राणियों के साथ वैर छोड़ के प्रेम–प्रीति पूर्वक आचरण करना परन्तु अहिंसा का सर्वथा त्याग भी नहीं करना चाहिए। जब जिस हिंसा से सर्व हित हो तब हिंसा करनी चाहिए। जैसे एक प्राणी की हिंसा करने से अधिक प्राणीयों का हित हो तो करनी चाहिए।

२. सत्य :–'सत्यं यथार्थे वाङ्मनसो, यथादष्श्टं यथानुमितं यथाश्रुतं तथा वाङ्मनष्चेति। परत्र स्वबोधसंकान्तये वागुक्ता, सा यदि न वंचिता भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिवन्ध्या वा भवेदिति। एशा सर्वभूतोपकारार्थं प्रवष्ता, न भूतोपघाताय। यदि चैवमप्यभिधीयमाना भूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत्। तेन पुण्याभासेन पुश्पप्रतिरूपकेण कश्टतमं प्राप्नुयात्। तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं ब्रूयात्।' व्यासभाष्य–२/३०

प्रत्यक्ष, अनुमान, तथा आगम प्रमाण से क्रमिक जैसा देखा, जैसा अनुमान किया तथा जैसा सुना, वैसा ही मन और वाणी की क्रिया होना सत्य है। अपनी अनुभूति को दूसरे में स्थापित करने के लिए वाणी का प्रयोग भ्रमजन्य , प्रतारण करने वाला एवं उलझन में डालने वाला हो, तो वह असत्य है।

यदि यथार्थ वाणी का प्रयोग भी किसी का अपकारक हो तो वह भी सत्य नहीं है, पाप है। पुण्य के सदृश भाषित होने वाला यह सत्य मानव का अतिशय कष्टकारक होता है। सत्य वाणी सम्पूर्ण प्राणियों की भलाई के लिये है। अतः परिशीलन कर सर्वभूतों की हितकारक

सत्य वाणी का प्रयोग करना चाहिये। इसी बात को स्मृतिकार मनुमहाराज जी लिखते हैं कि–

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानष्तं ब्रूयादेश धर्मः सनातनः।

३. अस्तेय :– 'स्तेयमषास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणम्, तत्प्रतिशेधः पुनरस्पष्हारूप–मस्तेयमिति' –योगदर्शन–२.३०

शास्त्र के विधान के बिना दूसरों से द्रव्य ग्रहण कराना 'स्तेय' है और दूसरों के द्रव्य को ग्रहण न करना अपितु उसका प्रतिशोध करना, केवल प्रतिशोध ही नहीं करना अपितु मन से भी उसकी स्पृहा न करना 'अस्तेय' है अर्थात् पदार्थ के स्वामी की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ को न लेना।

४.ब्रह्मचर्यः– 'ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियोपस्थस्य संयमः' (योगदर्शन–२.३०)

जितेन्द्रिय, वेदों को पढ़ने वाला एवं ब्रह्म का उपासक ये तीन ब्रह्मचर्य के अर्थ है। जो जन इनको धारण करता है, वही ब्रह्मचर्य है। इससे अलग और कोई ब्रह्मचर्य नहीं है।

५.अपरिग्रहः–'विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसहिंसा– दोषदर्षनादस्वीकरणमपरिग्रहः'

संसार के विषयों में अनेकानेक दोष होते हैं। सर्वप्रथम दोष उपार्जन है, जिसमें बहुत कष्ट होता है, दूसरा है रक्षण यह पूर्व की अपेक्षा कुछ कम कष्टदायक होता है। उपार्जित एवं सुरक्षित वस्तु की समाप्ति या ह्रास अत्यन्त कष्ट का कारण बनता है। भोगों को भोगने के काल में वस्तुओं के प्रति बहुत आसक्ति होती है। इस आसक्ति से विरक्त रहना ही अपरिग्रह है।

अब यमों की व्याख्या के बाद नियमों को प्रकाशित कर रहा हूँ, ये भी पाँच होते हैं–

१. **शौच**– दो प्रकार की होती है प्रथम बाह्य एवं द्वितीय आन्तरिक। बाह्य शौच से तात्पर्य है कि बाहरी पवित्रता बनाये रखना। जैसे स्नान आदि के द्वारा शरीर की स्वच्छता रखना। आन्तरिक शौच से तात्पर्य है कि विचारों की, मन आदि की पवित्रता। जैसे–हमारे चित्त में विद्यमान मद, मान, मात्सर्य, ईर्ष्या, असूय आदि मालिन्यताओं को समाप्त करने से आन्तरिक शुचिता की प्राप्ति होती है।

२. **संतोष** : 'सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा'

अर्थात् जीवन को चलाने के निए प्रारब्धानुसार प्राप्त साधनों से अधिक का संग्रह करने की इच्छा न करना ही सन्तोष है।

३. तपः 'तपो द्वन्द्वसहनं, द्वन्द्वष्च जिघत्सापिपासे शीतोष्णे स्थानासने काष्ठमौनाकारमौने च, व्रतानि चैव यथायोगं कृच्छ्राचन्द्रायण–सान्तपनादीनि'

द्वन्द्वों को सहना और द्वन्द्वभूख–प्यास, खड़ा होना, बैठना, काष्ठ के समान मौन और अनुकूलता के अनुसार व्रत, कच्छ्र, चान्द्रायण, सान्तपनादि तप कहलाते हैं।

४.स्वाध्यायः 'प्रणवादिपवित्राणां जपः मोक्षशास्त्राध्ययनं वा' ओंकार आदि पवित्र मन्त्रों का जप एवं मोक्ष की ओर अग्रसरित करने के लिए वेदादि शास्त्रों का अध्ययन करना ही स्वाध्याय है।

५.ईश्वरप्रणिधानः 'ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा'

अन्तर्यामी परमपिता परमेश्वर की प्रकृष्ट प्रेरणा से किये गये शुभ–अशुभ, लौकिक–अलौकिक अपने समस्त कर्मों को परम गुरु परमेश्वर को समर्पित करना ही ईश्वरप्रणिधान है।

इस प्रकार का हमारे वैदिक वाङ्मय में कर्म के स्वरूप का विवेचन किया गया है। इन कर्मों के यथार्थ स्वरूप को जानकर हम अपने जीवन को धन्य बनायें यही इस लेखनी की उपयोगिता होगी।

तीन प्रकार के उपदेश

–प्रभु आश्रित जी महाराज

पिता–वत्स, अब मैंने तुम्हें दृष्टान्त से समझा दिया है और तुमने भी कई लोकोक्तियां सुनाई। परन्तु मैं तुम्हें दन्त–कथायें नहीं वरन् शास्त्रों की बातें सुनाता हूं। सुनो!

उपदेश तीन प्रकार का होता हैः–

(१) रोचक (२) भयानक और (३) यथार्थ।

फिर यह उपदेश भी सबके लिए एक ही जैसा नहीं होता। सर्वसाधारण, जिनके मन शुद्ध तथा श्रद्धा से परिपूर्ण होते हैं और जिन्हें उल्टा–सीधा तर्क करके बाल की खाल निकालने का शौक नहीं होता, वह प्रायः अनपढ़ या कुछ यों ही साधारण से लिखे–पढ़े होने के कारण स्वयं पुस्तकों का स्वाध्याय नहीं कर सकते। उन्हें सत्संगादि में उपदेश करते हुए दृष्टान्तों द्वारा रोचक कथायें महात्मा–जन सुनाया करते हैं। इसका प्रयोजन यह है कि धर्म–कर्म में उनकी श्रद्धा, धृति दिनों–दिन बढ़ती जाए और वह सदैव धर्म कार्य करने में तत्पर तथा कटिबद्ध रहें और इस प्रकार सुख–सम्पत्ति और कल्याण को प्राप्त हो सकें।

दूसरी श्रेणी के लोग कुछ कठोर स्वभाव के मतिमन्द और मूर्ख होते हैं। उनकी प्रवृत्ति को कुमार्ग (कुराह) से हटा कर सुमार्ग पर लाने की आवश्यकता पड़ती है। दुष्कर्मों की ओर से उनकी रुचि हटाने के लिए उन्हें ऐसे भयानक उपदेश देने पड़ते हैं, जिससे उनके मन में पाप कर्म और उनके परिणाम की ओर से कुछ भय उत्पन्न हो और वह उनसे बच कर अपने मनवांछित सुख पाने के लिए शुभ तथा कल्याणकारी कर्मों की ओर प्रवृत्त हों।

तीसरी श्रेणी के लोग वे हैं जो विद्या–बुद्धि सम्पन्न हैं, सब पुस्तकें पढ़ सकते हैं, साइंस, फिलासफी (दर्शन), न्याय आदि का भली प्रकार ज्ञान रखते हैं। वह उपरोक्त रोचक तथा भयानक उपदेशों से प्रभावित नहीं हो सकते। उन्हें यह सब बच्चों जैसे खेल और मनघड़न्त कथायें–सी जान पड़ती हैं। उन्हें तो केवल ज्ञान ही यथार्थ मार्ग पर ले जा सकता है। इसीलिए ज्ञानी महात्मा ऐसे अधिकारी जिज्ञासुओं को सदैव यथार्थ उपदेश किया करते हैं। कविजन सदैव समयानुकूल और श्रोता समाज की बुद्धि तथा ज्ञान का विचार करके ही उनके अधिकार अनुसार अपनी कविता शक्ति का प्रकाश करते हैं। हमारे शास्त्रकार–ऋषि, मुनि, तत्ववेत्ता और त्रिकालदर्शी थे। उन्होंने अपनी योग समाधि और अन्तर्ध्यान अवस्था में अनुभव करके जब किसी विषय का साक्षात्कार कर लिया तभी तो उन्होंने इस विषय को लेखनीबद्ध किया अथवा अपने मुखारविन्द से वर्णन करके उपदेशामृत के स्त्रोत बहा दिए।

हमारे पूज्य ऋषि–मुनियों ने कर्म भी तीन प्रकार के बतलाए हैं। जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं। क्रियमाण अर्थात् वर्तमान कर्म। तो इन्हें भुनाने अथवा वसूल करने की अवधि वर्तमान जन्म से मरण तक नियत है। चाहे कोई दुष्कर्म करके उसके दुष्प्रभाव से किसी प्रायश्चित्त द्वारा निवृत्ति पाले, चाहे मरने के अनन्तर अगले जन्म के लिए अपने लेखे लिखवाए, चाहे उसकी ओर से निश्चिन्त रहकर उसका कुछ भी प्रतिकार न करे, अथवा कोई भला कर्म करके उसका फल इसी जन्म में पा ले और भगवान् पर कुछ भी उधार न छोड़े, या उस फल को भोगने की इच्छा ही न करे और प्रभु अर्पण कर दे और उसके फल भोग से किंचित्मात्र भी सम्बन्ध न रखे या अब इस जन्म में उसका फल न मांग कर आगामी जन्म के लिए उसे अपना भाग्य बना ले। दूसरा है संचित

कर्म, जिसका फल अभी निश्चित नहीं, किसी और जन्म में मिलेगा। उसे तुम किसी नए कर्म द्वारा इस जन्म में भी भोग सकते हो और सर्वथा मिटा भी सकते हो।

तीसरा है प्रारब्ध जिसकी जंजीरों से सारा संसार बंधा हुआ सुख–दुःख भोग रहा है। अज्ञान के कारण लोग इसे निरुपाय समझ बैठे है, परन्तु वास्तव में इसके फल को दबा अर्थात् हल्का भी कर सकते हैं, किन्तु समूल नष्ट नहीं कर सकते। जड़–मूल से नाश हो जाने वाले फल केवल उन्हीं कर्मों के हो सकते हैं, जिनका फल इस जन्म के लिए भगवान् की ओर से अभी निश्चित नहीं हुआ, जैसा कि मनु महाराज ने भी लिखा है:–

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः।
कामकार कृतेऽप्याहुरेके श्रुतिनिदर्शनात्।।
अकामतः कृतं पापं वेदाभ्यासेन शुद्धयति।
कामतस्तु कृतं मोहात्प्रायश्चित्तैः पृथग्बुधैः।

अर्थात् प्रायश्चित्त द्वारा पाप शुद्ध हो सकते हैं, इसलिए प्रायश्चित्त सार्थक है।

प्रायश्चित्त स्वयं एक कर्म होने के कारण पहले किए हुए कर्मों का विरोध करके उनके फल को नष्ट कर सकता है, किन्तु यह तभी होगा, जब कर्म नियत विपाक हों। कारण, नियत–विपाक कर्मों का फल प्रायश्चित्त द्वारा शिथिल हो सकता है, सर्वथा नष्ट नहीं हो सकता।

पुत्र–मैंने तो समझ लिया, परन्तु उस बात का क्या हुआ कि गेहूं से गेहूं पैदा होता है? क्या कभी यह भी हो सकता है कि गेहूं से गेहूं उत्पन्न न हो।

पिता–तुम्हारी कही हुई लोकोक्तियों का यथार्थ आशय यह है कि किसी भी मनुष्य को किसी मिथ्या–विश्वास के आश्रय नहीं बैठे रहना चाहिए। वह जैसा करेगा वैसा भरेगा, जो बोएगा वही काटेगा। यह तो है नियम, लोगों के चलने के लिए एक साधारण सा मार्ग। परन्तु ज्ञान कुछ और ही वस्तु है और कर्म कुछ और! केवल ज्ञान ही दोनों काम पूरे नहीं कर सकता, न कर्म ही वह काम दे सकता है, जो केवल ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। लोकोक्ति, छन्द श्लोक तो हैं ज्ञान–शिक्षा का मार्ग। देखो! एक किसान ने बड़ी सावधानी से बड़ा उत्तम बीज सम्भाल कर रखा। कारण? वह जानता है कि अच्छा बीज बोया जाता है तो उगकर बहुत अच्छा फल लाता है। परन्तु जब बोने का समय आया तो वह धरती की पहचान नहीं कर सका। उसने कल्लर, बन्जर, अथवा शोरा धरती में वह बीज बो दिया। खेत के इर्द–गिर्द बड़े परिश्रम और लागत से बाड़ भी लगा दी कि कहीं पशु चर न पाएं। बैल खूब चला–चलाकर पानी भी बड़े प्रेम से दिया, परन्तु वह बीज उगा ही नहीं। धरती का कल्लर उभर–उभर कर उसका नाश करता रहा।

अब बतलाओ–यह बोया हुआ बीज क्यों फल नहीं लाया? बोया तो यह गेहूं, पैदा हुआ गल्लर अर्थात् शोरा। और लो, किसी किसान ने बड़ी अच्छी गेंहूं बोई, परन्तु बोई सिलावे में। परिणाम यह हुआ कि गेहूं तो थोड़ी–सी पैदा हुई और छिनकनी बहुत। दूसरे ने खूब जोत कर और हल चलाकर पहले धरती को पुष्ट किया, फिर उसमें गेहूं अथवा जौ बोए। कई बार पौधों में से घासादि निकाल–निकालकर अपने पशुओं को खिलाया, औरों के पास भी बेचा और अन्त में फसल पकने पर गेहूं भी निकाल कर कोठे भर दिये। सारे साल अपने कुटुम्ब–कबीले के साथ खाया भी खूब और बेचा भी इतना कि दिल दूर–दूर हो गए। इसीलिए मनु महाराज ने कहा है कि कई कर्म अवश्य फल देते हैं और कई नष्ट हो जाते हैं, बीज, पृथ्वी तथा साधनों की अनुकूलता और प्रतिकूलता से जैसा कि मैंने तुम्हें समझाया है।

पुत्र–अब प्रारब्ध कर्म की मुझे समझ आ गई, परन्तु क्या यह भी पता लग सकता है कि अमुक फल किस कर्म का परिणाम है?

पिता–वत्स! अब समय बहुत बीत गया है, इस बात पर फिर कभी विचार करेंगे।

हृदय रोग में आयुर्वेदिक औषधियां

—देवराज भाई पटेल

हृदय मनुष्य शरीर का बहुत ही महत्व का अंग है। हृदय दो सेकंड के लिए भी अगर विश्राम ले तो हमें अपनी जिंदगी से विश्राम लेना पड़ेगा। इतने महत्व का अंग होने के बावजूद भी हम हृदय के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लापरवाही का वर्ताव करते हैं। परिणामस्वरूप हृदय की अनेक बीमारियों से घिर जाते हैं।

हृदय रोग बहुत कारणों से होता है, जैसे कि अति मानसिक तनाव, चिंता, भाग—दौड़ वाला जीवन, अति वसायुक्त आहार, जैसे कि घी—तेल, मक्खन वगैरह का ज्यादा उपयोग, ज्यादा श्रम, हाई ब्लड प्रैशर, डायबिटीज, तम्बाकू सेवन, धूम्रपान, परोक्ष धूम्रपान, मांसाहार वगैरह का सेवन करने वाले व्यक्ति में सामान्य व्यक्ति से 75 प्रतिशत ज्यादा जोखिम होता है। गर्भनिरोधक दवाइयों का अत्यधिक उपयोग ब्लड प्रेशर को बढ़ाता है। ऐसी स्त्रियों में हार्ट अटैक की सम्भावना अधिक रहती है।

हृदय रोग के लक्षणों की बात करें तो हृदय रोग के हमले के वक्त हृदय प्रदेश में तीव्र पीड़ा होती है। पीड़ा इतनी तीव्र होती है कि मरीज सहन नहीं कर पाता। कई बार हृदय प्रदेश में पीड़ा न होकर वाम हस्त प्रदेश में पीड़ा का आरंभ होता है और धीरे—धीरे बढ़ती जाती है। पीड़ा की वजह से मरीज को सांस लेने में तकलीफ होती है। परिणामस्वरूप मरीज मरणासन्न यानि मृत्यु के मुख के पास पहुंच जाता है। यह रोग अचानक ही शुरू होता है और तत्पश्चात् वेग के साथ आवेग के रूप में होता है। हार्ट अटैक के प्रथम हमले के समय जो मरीज बच जाता है, उसे कुछ दिन या कुछ महीने के पश्चात् हृदयशूल का दूसरा अटैक आने की संभावना भी रहती है। हृदयशूल का तीसरा हमला दूसरे हमले की तुलना में ज्यादा तीव्र होता है।

पीड़ा की वजह से मरीज पसीना—पसीना हो जाता है। कितनी बार सांस अवरोध भी होता है। तीव्र सांसावरोध की परिस्थिति में मरीज की मौत भी हो सकती है। इस हमले की स्थिति 2 मिनट से लेकर 1/2 से 1 घंटे तक भी रह सकती है।

हृदय रोग के मरीज को रखनी होंगी निम्न सावधानियां

सादा और हलका भोजन एवं ताजा और भूख से कम भोजन लेना है। भोजन में वसा, घी, तेल, चीज़, मक्खन बहुत कम लेना। मोटापे से बचें और किसी भी प्रकार का व्यसन न करें। तनावरहित एंव शांतिपूर्ण जीवन जीयें। ब्लड प्रैशर, डायबिटीज और वजन को नियंत्रित रखें।

चाय—कॉफी की अति कम मात्रा में सेवन करें या न करें। नियमित रूप से योगाभ्यास या हल्की कसरत करें। वातवर्धक आहार से परहेज करें।

हृदयरोग की आयुर्वेद चिकित्सा

भारतीय संस्कृति, वेद में आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद माना गया है। हृदयरोग में आयुर्वेद औषधियों का बहुत ही असर कारक परिणाम आता है। आयुर्वेद में ऐसी कितनी ही औषधियां है जिनके प्रयोग से हृदय रोग के मरीज हृदय रोग के हमले से बच सकते हैं। हृदय के तमाम रोगों में (1) अर्जुन छाल को

श्रेष्ठ माना गया है। अर्जुन छाल का चूरन 10 ग्राम, दूध 150 मि.लि., पानी 150 मि.लि., पोदीना चार से पांच पत्ते, तुलसी–पत्र चार से पांच, सभी चीजें लेकर उबालना है। पानी बिल्कुल जल जाए और दूध बाकी रहे तब छानकर सुबह–शाम पीना है। अर्जुनक्षीर पाक का यह प्रयोग हृदयरोग के रोगियों के लिए बेहद लाभकारी है। (2) अर्जुन की छाल का चूरन 4 ग्राम और पुष्करमूल का चूरन 4 ग्राम पानी के साथ दिन में दो बार लेने से फायदा होता है। (3) प्रभाकर बटी की 1 या 2 गोली सुबह–शाम अर्जुन सिद्ध दूध के साथ लेने से पित्त से हुए हृदयरोग से छुटकारा मिलता है। (4) हरडे, रास्ना, वच, पीपल, पुष्करमूल और सोंठ 5–5 ग्राम मात्रा में लेकर कूटकर–पीसकर बारीक चूरन बनाकर रखना है। 3–3 ग्राम चूरन पानी के साथ सेवन करने से कफज हृदयरोग नष्ट होता है। (5) हरेक प्रकार के हृदय रोग पर लहसुन का खूब आश्चर्यजनक परिणाम होता है। यह उच्च रक्तचाप को भी कम करता है। इसके अलावा हृदयार्णव रस, चिंतामणि रस, जहरमोहरपिष्टी, स्वर्णभस्म, रजतभस्म, बृहत कस्तूरी, भैरव रस, मुक्तापिष्टी, अर्जनारिष्ट इत्यादि औषधियों का प्रयोग आयुर्वेद जानकार की सलाह में रहकर कर सकते हैं।

अंत में हृदयरोग में एक सरल और घरेलू प्रयोग बता रहा हूं। पीपल के पत्ते में हृदय को बल देने की एक अद्‌भुत क्षमता है। पीपल की कोंपले न हो, ऐसे 15 पत्ते लेने हैं। प्रत्येक पत्ते को ऊपर का और नीचे का भाग कैंची से काटकर अलग करके पानी से साफ करके सब पत्तों को 2 गिलास पानी में धीमी आंच में उबालना है। जब 1/3 भाग पानी बाकी रहे तब ठंडा कर छान लेना है। इस उकाला के तीन भाग कर तीन घंटे के अंतर में जल्दी सुबह लेना है। उकाला लेने से पहले पेट एकदम खाली न रखें। लेकिन हल्का नाश्ता करने के पश्चात् उक्त प्रयोग करें। हार्ट अटैक के कुछ दिन बाद लगातार पंद्रह दिन तक इसको लेने से हृदय फिर से स्वस्थ हो जाता है और फिर से हृदय रोग का हमला होने की आशंका नहिवत् जैसी रहती है।

रामबाण नुस्खा

यदि हृदय गड़बड़ करने लगे तो एक अन्य उपचार यह है–एक चम्मच पान का रस, एक चम्मच लहसुन का रस, एक चम्मच अदरक का रस, एक चम्मच शहद–इन चारों रसों को एक साथ मिला लें और पी जाएं। इसमें पानी मिलाने की आवश्यकता नहीं है। इसे दिन में एक बार सुबह और एक बार शाम को पिएं। तनाव और चिन्ता से मुक्त होकर इसका प्रयोग करें। हृदय में कोई और कठिनाई हो तो जो दवा लेते हैं, उसे लेते रहें। यह नुस्खा 21 दिन का है। आगे चल कर इस दवा को यदि प्रतिदिन सवेरे एक समय लेते रहेंगे तो हृदय रोग कभी नहीं होगा।

पुरोहितों की आवश्यकता

देहरादून जनपद की निम्न आर्य समाजों के लिए व्यवहार कुशल, मृदुभाषी पुरोहित की आवश्यकता है। नि:शुल्क आवास व्यवस्था के साथ मानदेय कर्मकाण्डीय योग्यता व अनुभवानुसार देय होगा।

आर्य समाज का नाम	**सम्पर्क सूत्र एवं मोबाईल नम्बर**
आर्य समाज मसूरी	श्री नरेन्द्र साहनी, 9837056165
आर्य समाज चकराता	श्री एस.एस. वर्मा, 9410950159
आर्य समाज धर्मपुर	श्री शत्रुघ्न कुमार मौर्या, 9412938663

वेदों मे दान की महिमा

—जगरूप सिंह छिकारा आर्य

प्रिय पाठकों! इस प्रसिद्ध विविध सृष्टि में स्वर्ग से लौटकर आये हुए अर्थात् सद्कर्मों को लेकर आए हुये सज्जनों के शरीर में चार प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। १. दान की प्रवृत्ति में तत्पर रहना २. सदैव मधुर वाणी बोलना। ३. ईश्वर की भक्ति में लीन रहना ४. विद्वानों की सेवा में सदा तत्पर रहना।

वेदों के अनुकूल, आर्य दानवीर का कर्तव्य है कि अपनी कमाई का सुपात्र को १० प्रतिशत दान करे। दान किये बिना न ही तो धन की शोभा रहती है न ही धन लोक—परलोक में सार्थक रहता है।

सुपात्र को दान देना एक शुभ कर्म है, परन्तु कुपात्र को देना अशुभ। सुपात्र कौन—गरीब, रोगी, अंगहीन, अनाथ, कोढ़ी, विधवा या कोई जरूरतमंद, विद्या और कला कौशल की वृद्धि, गौशाला, अनाथालय और हस्पताल आदि दान के पात्र है। महर्षि दयानन्द जी ने कहा है कि "दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र, औषधि के अधिकारी सब प्राणी मात्र हो सकते हैं।"

अगर कोई व्यक्ति दान देकर उस धन को शराब, मांस, तम्बाकू, जुआ, सट्टा, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों में लगाता है उससे मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर की हानि होती है। अतः उसे सुख के बजाय दुःख भोगना पड़ता है। इसमें भागी दान देनेवाला भी होता है। जैसे पत्थर की नाव में बैठने वाला तथा नाव दोनों ही डूबते हैं। अथर्ववेद में लिखा है कि मैं पाप कर्म के लिए कभी दान न दूं।

गीता में लिखा है कि—हे युधिष्ठिर! धनवानों को धन मत दो, दरिद्रों का पालन करो। भरे पेट को रोटी देना उतना ही गलत है जितना स्वस्थ को औषधि। रोटी भूखे के लिए है और औषधि रोगी के लिए। समुद्र में हुई वर्षा व्यर्थ है। सृष्टि में ईश्वर का ऐसा नियम है कि जो कोई किसी को जितना सुख पहुंचाता है, ईश्वर के न्याय से उतना ही उसे सुख मिलता है। इसलिए दान का उद्देश्य प्राणियों को अधिक से अधिक सुख पहुंचाना है। ऐसा दान जिसे लेने वाले को सुख न मिले, देने वाले को भी आनन्द नहीं मिलता। गीता में तीन प्रकार का दान बताया गया हैः—

१. **सात्विक दान**— उचित समय पर तथा उचित स्थान पर किसी ऐसे सुपात्र को सत्कारपूर्वक दिया हुआ दान जिससे किसी प्रतिफल की आशा न हो सात्विक दान कहलाता है।

२. **राजसी दान**— प्रतिफल की आशा से या भविष्य में किसी लाभ की आशा से दिया हुआ दान और जिसे देने में दुःख होता हो तो ऐसा दान राजसी दान होता है।

३. **तामसी दान**— गलत स्थान और गलत समय पर बिना उचित सत्कार के अथवा तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ दान तामसी दान कहलाता है।

तैत्तिरीय उपनिषद में प्राचीनकाल का एक दीक्षान्त भाषण है। उसमें आचार्य शिष्य को स्नातक होने पर उपदेश देता है कि यदि दान देने में श्रद्धा है तो दान देना। यदि श्रद्धा नहीं भी

है तो भी दान देते रहना चाहिए। संसार में यश पाने के लिए दान देना। दूसरे लोग दान दे रहे हैं उन्हें देखकर लज्जावश भी दान देना। इस भय से भी दान देना कि यदि दूंगा तो परलोक सुधरेगा, कमाया हुआ धन भी सार्थक होगा। इस विचार से भी दान देते रहना कि गुरुजी के सामने प्रतिज्ञा की थी कि दान दूंगा। किसी ने ठीक ही कहा है–दान दो, खूब दो, पर पात्र और अपात्र को देख कर दो।

मनुस्मृति में लिखा है– संसार में जितने दान है, अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घृत आदि। इन सब दानों में वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है। इसलिए जितना बन सके उतना प्रयत्न, तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में दान करें। सुपात्र को दान देना तथा यज्ञ कर्मों में किये गये शुभ दान का लाभ ईश्वर के न्याय से एक हजार गुणा अधिक दान करने वाले के कर्म फल में जमा हो जाता है जिसका आनन्द लोक–परलोक में मिलता है।

चिड़ी चोंच भर ले गई नदी न घटियों नीर।
दान दिये धन न घटे कह गये सन्त कबीर।।

आर्ष परम्परा के संवाहक स्व. आचार्य राजवीर शास्त्री

मान्यवर,

लेखनी के धनी, गुरुकुल झज्जर के आदिकालीन सुयोग्यतम एवं यशस्वी स्नातक, महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रोक्त आर्ष परम्परा के संवाहक, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट की मासिक पत्रिका, 'दयानन्द संदेश' के अनेक दशकों तक अवैतनिक सम्पादक, 'वैदिक कोष' के निर्माता, पातंजल योग दर्शन और उपनिषदों के सुविख्यात भाष्यकार, मनुप्रोक्त धर्मशास्त्र के प्रख्यात पंडित और व्याकरण के उद्भट विद्वान् आचार्य राजवीर शास्त्री का 25 सितम्बर 2014 को निधन हो गया। ऐसे महनीय व्यक्तित्व और कृतित्व के धनी आचार्य प्रवर की जयंती सितम्बर 2016 के अन्तिम सप्ताह में ससमारोह आयोजित की जानी है। इस अवसर पर उनकी स्मृति को स्थायित्व प्रदान करने हेतु एक स्मृति ग्रन्थ, ''**आर्ष परम्परा के संवाहक स्व0 आचार्य राजवीर शास्त्री**'' का प्रकाशन किया जाएगा। अतः आर्यजगत् के समस्त विद्वानों/आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि कृपया निम्न रूप में अपना सहयोग प्रदान करने का कष्ट करें–

1. आचार्य प्रवर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में लेख भेज कर।
2. आचार्य जी के सबन्ध में स्वानुभूत संस्मरण भेज कर।
3. यदि किसी सज्जन के पास आचार्य जी का कोई लेख, सम्पादकीय, पत्राचार, जीवन प्रवाह के किसी भी पहलू पर फोटो आदि उपलब्ध हों तो उन्हें भिजवाने की कृपा करें।

निवेदन है कि उक्त सामग्री एवं लेख आदि कृपया 15 अगस्त 2016 से पूर्व अवश्य प्रेषित करने का कष्ट करें।

निवेदक

कृष्ण कान्त वैदिक
166 ओल्ड नेहरू कालोनी, देहरादून–248001
Email: kkvaidik@gmail.com

व्रत, उपवास–क्या और क्यों? वैदिक विवेचन

–आचार्य प्रमोद वेदालंकार

समाज में ऐसी विभिन्न मान्यताएं हैं जो प्रयोजन से रूढ़ि परम्परा में प्रचलित हो गयी हैं। हम ऐसी रूढ़ मान्यताओं को स्वीकार किए हुए हैं जिनके स्वरूप एवं उद्देश्यों का ही ज्ञान हमें नहीं है। यदि हम बिना प्रयोजन अथवा बिना किसी उद्देश्य के किसी कार्य को करते हैं तो समाज के लोग हमें मूर्ख की संज्ञा प्रदान करते हैं। लेकिन समाज ने ऐसी विभिन्न मान्यताएं जिन्हें धार्मिकता से जोड़ दिया है, उन्हें हम क्यों करते हैं इस तथ्य का ज्ञान ही हमें नहीं है। फिर भी उस कृत्य को करने वाला व्यक्ति समाज के द्वारा सभ्य नागरिक की संज्ञा प्राप्त करता है ऐसा क्यों?

सामान्यतया समाज में व्रत का अर्थ भोजन न करना प्रचलित है। बहुत से लोग पृथक्–पृथक् दिवस में व्रत रखते हैं, उनमें से सोमव्रत, मंगलव्रत, शुक्रव्रत, शनिव्रत ये दिवस प्रसिद्ध हैं। जिस दिवस व्रत रखा जाता है उस दिवस भोजन नहीं किया जाता। संसार के किसी भी शब्दकोष में व्रत शब्द का अर्थ भोजन न करना है ही नहीं। यह बात भिन्न है कि कोई व्यक्ति यह व्रत धारण करे कि उसको भोजन नहीं करना है, लेकिन व्रत को केवल भोजन न करने के अर्थ में लेना उसी भांति है जिस भांति कोई व्यक्ति निकला है अपने घर से और चलता जा रहा है, उसे कहां जाना है अपने लक्ष्य का ज्ञान ही नहीं है। ऐसा व्यक्ति भटकाव के अलावा क्या प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार भोजन न करने के संदर्भ में व्रत शब्द को परिभाषित करने वाले व्यक्ति को ज्ञान ही नहीं है, उसने भोजन न करने का व्रत क्यों लिया है। शतपथ ब्राह्मण में आया है–**ओ३म् व्रतमुपैष्यन् अन्तेरणाहवनीयंचगार्हपत्यंच प्रड्त्तिष्ठन्नप उपस्पृशति तद्यदप उपस्प्रशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरत्तरतो मेधा वाऽआपः पवि३पूतो व्रतमुपायानीति तस्माद्वाऽअप उपस्पृशति।**

इष्टि यज्ञ वाला व्यक्ति अग्नि को सम्बोधन करके जल का स्पर्श करते हुए व्रत धारण करता है। जल का स्पर्श क्यों करता? इसलिए कि मनुष्य अपवित्र है, वह मिथ्या भाषण करता है। जल के स्पर्श से उसकी शुद्धि हो जाती है। जल वस्तुतः पवित्र है। प्रयोजन यह है कि पवित्र होकर व्रत करूँ।

अग्नि देवों का व्रतपति है इसलिए अग्नि को सम्बोधन करके कहता है–**अग्ने व्रतपते चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामित्यग्निर्वै देवानां व्रतपतिस्त–स्मादेवैतत्प्राह व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामिति नात्र तिरोहितमिवास्ति।**

हे व्रतपते अग्नि! मैं व्रत करना चाहता हूं। मैं व्रत का पालन कर सकूं इस योग्य हो जाऊं। यज्ञ की समाप्ति पर वह व्रत को समाप्त करता है। जब उसने व्रत किया था तो वह अमानुष अर्थात् देव हो गया था।

सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति। स वै सत्यमेव वेदत्। एतद् वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं

तस्मात्ते यशो यशो ह भवति य एवं विद्वान्सत्यं वदति।

देव सत्य है, मनुष्य अनृत। यह जो कहा गया है कि 'अनृत से सत्य को प्राप्त होऊं' उसका तात्पर्य यह है कि मनुष्यों में से एक था, देवों में से एक हो जाऊं। देव सत्यरूपी यश का पालन करते हैं। इसी से उनको यश मिलता है। मनुष्यत्व छूटकर देवत्व आ जाता है। व्रत का अर्थ सामान्यता लोक में भोजन न करने के अर्थ में कैसे प्रचलित हुआ? शतपथ ब्राह्मण में आया है कि–**तदुहाषाढ सावयसोऽनशनमेव व्रतं मेने मनोह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति तऽएनमेतद् व्रतमुपयन्तं विदु: प्रातर्नो यक्षयतऽइति तेऽस्य विश्वेदेवा ग्रहानागच्छति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः।**

आषाढ़ सावयस मुनि का मत था कि व्रत में खाना नहीं चाहिए। देव मनुष्य के मन को जानते हैं। वे जानते हैं कि जब उसने आज व्रत किया है तो कल वह यज्ञ करेगा। वे सब देव उसके घर जाते हैं। वे उसके घर में उपवास करते हैं (उप+वास) किसी के समीप रहना। इसीलिए इस दिन का नाम है 'उपवसथ' (उपवास का दिन)। यह सर्वथा अनुचित है कि आगन्तुक मनुष्यों को खिलाने से पहले घरवाला स्वयं खा ले। यह तो और भी अनुचित है कि देवों को खिलाने से पहले खा ले। इसलिए नहीं खाना चाहिए। इसी कारण रूढ़ि में अज्ञान के कारण व्रत एवं उपवास का अर्थ भोजन न करने के संदर्भ में प्रचलित हो गया।

हमने बहुत से लोगों को कहते सुना है कि वैदिक धर्म को मानने वाले व्रत, उपवास को नहीं मानते। लेकिन ऐसा नहीं है वैदिक धर्म तो व्रत और उपवास का ही धर्म है। व्रत का अर्थ है संकल्प, उपवास का अर्थ है समीप रहना। अर्थात् ऐसा व्रत धारण करो जो तुम्हें ईश्वर के समीप ले जा सके। ईश्वर तुम्हारे भीतर है, उसे तुमने कभी खोया नहीं है अन्यथा तुम हो ही नहीं सकते थे। थोड़ी सी धुएं की परतें काटनी हैं। इसलिए व्रत एक प्रक्रिया है, एक उपचार है, एक चिकित्सा है। उपवास एक विज्ञान है–अंतश्चक्षु की खोज।

Not afraid of sin but punishment

Man is not afraid of committing sin, but of punishment; he wants to be able to indulge in the forms of sins and corruption but not get caught or punished. This is why whenever he is alone, (or rather thinks he is alone), he does not hesitate to commit sins.

Only very few persons realise the omnipresence of God, who is stated to be in the vedas as having thousand eyes.

He watches and sees everything and when, being Just, He punishes, cries of "Trahi, Trahi" rend the sky.

This is why I repeatedly warn: Beware, He wields an iron hand!

From :
Inner Voice of Mahatma Prabhu Ashritji Maharaj

धर्म और अधर्म का ज्ञान

—स्वामी वेदरक्षानन्द सरस्वती

'धर्म' जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन न्यायाचरण, पक्षपातरहित, सर्वहित करना, सत्यभाषणादि युक्त यम—नियमादि पालन कराना है। न्याय—सत्य का ग्रहण और अन्याय—असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार, जो कि प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से सुपरीक्षित जिनको सदा वेदोक्त एवं वेदों से अविरुद्ध हैं, ऐसे सर्वतन्त्र सिद्धान्त जिनको सदा से सब मानते आये, मानते हैं, मानेंगे अर्थात् जो तीन काल में सबको एक—सा मानने योग्य है (जो सबके अविरुद्ध होता है), जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपात रहित विद्वान् मानें, जो सृष्टि नियमों के अनुकूल हो। सब मनुष्यों के यही एक मानने योग्य है।

धर्म से जो विपरीत है, अर्थात् जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा यथावत् पालन न करना, अन्यायाचरण, पक्षपातरहित अन्यायी होकर सबके अहित के काम करके अपना ही हित करना, मिथ्या भाषणादि युक्त, विषय भोगरतता जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से अपरीक्षित और अनार्ष ग्रन्थ प्रोक्त अवैदिक एवं अविद्या हठ अभिमान क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेद विद्या से विरुद्ध है, जो तीन काल में एक सा मानने योग्य न हो और परस्पर विरुद्धाचरण युक्त हो, अविद्वान् अर्थात् दुराग्रही स्वार्थियों, पाखण्डियों, धूर्तों—मूर्खों द्वारा प्रतिपादित मत तथा जो सृष्टि नियमों के विरुद्ध है। सब मनुष्यों के लिए इनका छोड़ना योग्य है।

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयस्सिद्धिः स धर्मः।।

जिनके आचरण करने का फल (अभ्युदय) इस संसार में अर्थात् इस वर्तमान जन्म=इहलोक और परजन्म=परलोक में उत्तम सुख और निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष सुख पाकर स्वतन्त्रता से सुख ही सुख का अनुभव करना होता है उसकी प्राप्ति होती है उसी का नाम धर्म है। इससे विपरीत फल अधर्म का होता है अर्थात् अधर्म से इहलोक और परलोक में दुःख उठाना पड़ता है और यह जन्म—मरण चक्र का कारण बनता है।

धर्म का फल भद्र अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस की सदा प्राप्ति होती है। धर्माचरण से कभी दुःख नहीं प्राप्त हो सकता, सदा सुख की प्राप्ति ही होती है और अधर्माचरण से कभी सुख नहीं प्राप्त हो सकता, सदा दुःख की प्राप्ति ही होती है। ईश्वर ने वेदों में सब मनुष्यों के हित के लिये जिसका उपदेश किया है जिससे करने की आज्ञा दी है प्रेरणा की है वही धर्म अर्थयुक्त होता है और जिसका ईश्वर ने निषेध किया है वह अनर्थयुक्त होने से अधर्म है। ऐसा जानकर सब मनुष्यों को इस अधर्म का त्याग करना चाहिये और धर्म का आचरण करना चाहिये अर्थात् इसी धर्म के अनुसार सब काम करने चाहियें। इस प्रकार के धर्माचरण से उपासक ईश्वर सान्निध्य=परमेश्वर की समीपता प्राप्त करता है।

धर्म चर, अधर्मं त्यज— सदा दृढ़कारी कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक—क्रूर—दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहने वाला उपकारी, धर्मात्मा व्यक्ति, मन के मदन और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे। इसलिये मिथ्याभाषणादि रूप अधर्म को छोड़ के धर्माचरण से दुष्ट अधर्मयुक्त दुष्ट लक्षणों का नाश करता है। अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ के मिथ्या भाषण, कपट, पाखण्ड और विश्वासघात आदि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है। धनादि ऐश्वर्य से खान—पान वस्त्र—आभूषण यान—स्थान, मान—प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, अन्याय से शत्रुओं को भी जीत लेता है। परन्तु

पश्चात् जड़ खाये हुये वृक्ष की तरह वह अधर्मी शीघ्र नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है। क्योंकि किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता। परन्तु इस संसार में जैसे गाय की सेवा का फल दूध आदि शीघ्र नहीं होता, वैसे ही जिस समय मनुष्य अधर्म करता है, उसी समय अधर्म का फल भी नहीं होता। इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म करने से नहीं डरते। तथापि यह निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे–धीरे उस अधर्मकर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काटता चला जाता है और पश्चात् अधर्मी दुःख ही दुःख भोगता है। यदि बहुत–सा धन राज्य और अपनी कामना अधर्म से सिद्ध होती है तो भी अधर्म सर्वथा छोड़ देवे और ऐसा वेद विरुद्ध धर्माभास जिसके करने से उत्तरकाल में दुःख एवं संसार की उन्नति का नाश होवे, वैसा नाम मात्र का धर्म और कर्म कभी नहीं करना चाहिये।

जो पुरुष धर्म का नाश करता है धर्म उसी का नाश कर देता है और जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसी की रक्षा करता है। इसीलिये मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले (धर्म विरुद्धाचरण से हम नष्ट हो जावें) इस भय से धर्म का हनन (त्याग, अधर्माचरण) कभी नहीं करना चाहिये। सब मनुष्यों को चाहिये कि धर्म से वेदादि शास्त्रों का पठन–पाठन, गायत्री प्रणवादि का अर्थ विचार, ध्यान, कर्मोपासना, ज्ञान, सत्योपदेश और योगाभ्यास आदि उत्तम कर्मों से इस शरीर को ब्रह्म सम्बन्धी करें अर्थात इस जन्म को ब्रह्म सान्निध्ययुक्त करें और 'ओ३म्' पदवाच्य परब्रह्म परमात्मा की कृपा से और अपने धर्मयुक्त पुरुषार्थ से परस्पर शरीर मन और आत्मा को प्राप्त होने वाला त्रिविध दुःख नष्ट हो जावे और हम सब लोग प्रीति से एक दूसरे वर्त्त के धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष की सिद्धि में सफल हो सदैव स्वयं आनन्द में रहकर सबको आनन्द में रखें।

ईश्वर और धर्म दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्माचरण से मनुष्य का अंतः करण शुद्ध होता है, जिससे उसे इष्टदेव परमदेव दर्शनीय ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है। जिसकी कृपा से त्रिविध दुःखों और दशधा पापों से मुक्त होकर जन्म–मरण के चक्र से निकल परम सुख को प्राप्त होता है।

फार्म–4

प्रकाशन	:	पवमान
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक का नाम	:	प्रेम प्रकाश शर्मा
जिस स्थान पर मुद्रक का काम होता है उसका सही तथा ठीक विवरण	:	सरस्वती प्रेस, 2–ग्रीन पार्क, देहरादून
प्रकाशक का नाम	:	प्रेम प्रकाश शर्मा
क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
प्रकाशक का पता	:	वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, देहरादून
सम्पादक का नाम	:	कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
क्या भारत का नागरिक है?	:	हाँ
सम्पादक का पता	:	166 ओल्ड नेहरू कॉलोनी, इलाहाबाद बैंक के पास देहरादून (उत्तराखण्ड)
उन व्यक्तियों के नाम, पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत के हिस्सेदार हों।	:	वैदिक साधन आश्रम तपोवन, देहरादून

मैं कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री एतद्द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 15–03–2016

कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री
सम्पादक

ओ३म्

श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल पौंधा के वार्षिकोत्सव में डा. रघुवीर वेदालंकार पं. राजवीर शास्त्री सम्मान से आदृत

—मनमोहन कुमार आर्य

5 जून, सन् 2016 के समापन सत्र में वेदों एवं सत्यार्थ प्रकाश के प्रसिद्ध विद्वान डा. रघुवीर वेदालंकार को पं. राजवीर शास्त्री की स्मृति में सम्मानित किया गया। डा. रघुवीर न केवल वेदों के शीर्षस्थ विद्वान ही हैं अपितु उन्होंने वैदिक विचारधारा पर उपदेश देने सहित उच्च कोटि के ग्रन्थों की रचना भी की है। आपने गुरुकुल पौंधा में रहकर इसके ब्रह्मचारियों को पढ़ाया भी है। आप गुरुकुल पौंधा के संस्थापक स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती के गुरुकुल झज्जर में सहपाठी भी रहे हैं और समय समय पर गुरुकुल गौतम नगर में आयोजित चतुर्वेद पारायण यज्ञों के ब्रह्मा मनोनीत होकर उन्हें सम्पन्न भी कराते आ रहे हैं। गुरुकुल पौंधा से आपका विशेष प्रेम है। यही कारण है कि आपका अन्यत्र जाने का कार्यक्रम था जिसे गुरूकुल के आचार्य धनन्जय के निवेदन पर निरस्त कर आप यहां देहरादून पधारे। डा. धनन्जय जी ने ऋषिभक्तों को आपकी सेवाओं से अवगत कराया और आपके प्रति गहरी कृतज्ञता व्यक्त की। अभिनन्दन कार्यक्रम के अन्तर्गत गुरुकुल के पूर्व ब्रह्मचारी और हरिद्वार के एक महाविद्यालय में प्रवक्ता डा. रवीन्द्र आर्य ने स्वलिखत संस्कृत भाषा के अभिनन्दन पत्र का वाचन किया। पं. राजवीर शास्त्री जी के दो पुत्रों एवं उनके परिवारजन गुरुकुल कांगड़ी में वेद विभाग के अध्यक्ष डा. दिनेश चन्द्र शास्त्री ने डा. रघुवीर वेदालंकार के गले में मोतियों का हार पहनाया। उन्हें शाल भी ओढ़ाया गया और अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया।

अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए डा. रघुवीर जी ने कहा कि गुरुकुल का परिवार ही हमारा परिवार होता है। उन्होंने व्यंग में कहा कि डा. धनन्जय ने उनके साथ छल किया है उसी का परिणाम यह अभिनन्दन का आयोजन है। उन्होंने बताया कि कुछ दिन पूर्व डा. धनंजय ने मुझसे मेरा परिचय मांगा था, तब मैं इनकी योजना को समझ नहीं सका था। उनकी उस योजना का मूर्त रूप मुझे आज देखने को मिला। पं. राजवीर शास्त्री जी जैसे तपस्वी विद्वान की स्मृति में अभिनन्दन किये जाने से मुझे प्रसन्नता है। पं. राजवीर शास्त्री जी ने मुझे पढ़ाया भी है। डा. रघुवीर जी ने कहा यह गुरुकुल पं. राजवीर शास्त्री जी की स्मृतियों को संजोए हुए है। आचार्य रघुवीर जी ने यह भी कहा कि इस गुरुकुल से आरम्भ से ही मेरी आत्मीयता बन गई है। डा. रवीन्द्र आर्य का उल्लेख कर उन्होंने कहा कि 16 से 25 वर्ष तक युवावस्था हाती है। मैंने इन्हें पढ़ाया भी है। मैं भी इन्हें सम्मानित करता हूं। यह कहकर उन्होंने अपनी शाल डा. रवीन्द्र आर्य जी को ओढ़ा दी।

डा. रघुवीर वेदालंकार जी को अभिनन्दन के रूप में जो नगद धनराशि दी गई थी वह भी उन्होंने गुरुकुल पौंधा द्वारा संचालित एक अन्य न्यास के कार्यों के लिए भेंट कर दी। उन्होंने यह भी कहा कि मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि यह गुरुकुल 16 वर्ष का युवा गुरुकुल है।

सचिव की कलम से

वैदिक साधन आश्रम तपोवन नालापानी देहरादून में दिनांक 15 मई 2016 को महामहिम राज्यपाल हिमाचल प्रदेश आचार्य श्री देवव्रत जी द्वारा महात्मा प्रभुआश्रित सत्संग भवन का विधिवत उद्घाटन किया गया। इस अवसर पर भारी संख्या में देहरादून तथा अन्य प्रदेशों से पधारे आर्य भाई–बहिनों ने कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई। इस सत्संग भवन के निर्माण में आश्रम के सम्मानीय अध्यक्ष श्री दर्शन कुमार अग्निहोत्री जी, आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य, माता सुरेन्द्र अरोड़ा जी तथा महात्मा प्रभुआश्रित जी के श्रद्धावान भक्तों ने दिल खोलकर दान दिया है। ग्रीष्मोत्सव के उपरान्त इस सत्संग भवन में आचार्य जी के मार्गदर्शन में दिनांक 30 मई से 3 जून 2016 तक युवतियों के लिय दिव्य जीवन निर्माण शिविर का आयोजन किया गया जिसमें 71 बालिकाओं ने अति उत्साह एवं अनुशासन का पालन करते हुए अपने जीवन को कृतार्थ किया। तदोपरान्त 9 जून से 13 जून 2016 तक युवकों के लिये शिविर का आयोजन किया गया जिसमें 153 युवकों ने भाग लिया। ये दोनों शिविर पूर्व वर्षों की भाँति निःशुल्क थे। केवल स्वेच्छापूर्वक दिया गया दान ही स्वीकार किया गया। सत्संग भवन के निर्माण के बाद अब बड़े योग शिविरों का आयोजन सम्भव हो गया है।

आप भली–भाँति अवगत हैं कि तपोवन आश्रम में आय का कोई साधन नहीं है जबकि कर्मचारियों के मानदेय, ऋषि लंगर, चिकित्सालय, गौशाला, बिजली, पानी तथा भवनों की मरम्मत, पुताई आदि पर प्रतिमाह लगभग 1.5 से 2 लाख रुपया व्यय होता है। आश्रम की इनकम के क्या उपाय किये जाये। इस सम्बन्ध में आपके सुझाव आमंत्रित हैं। अब हमें और आपको मिलकर तपोवन आरोग्यधाम (चिकित्सालय) के आधे–अधूरे भवन निर्माण को पूर्णता की ओर ले जाना है ताकि श्री रामभज मदान जी, जिन्होंने 50 लाख रुपयों से भी अधिक धनराशि दान देकर चिकित्सालय भवन का निर्माण वर्तमान अवस्था तक पहुँचाया, उनका स्वप्न साकार हो सके और आर्य सन्यासियों, प्रचारकों, वानप्रस्थियों आदि को स्वास्थ्य लाभ प्राप्त हो सके। हमें चिकित्सालय भवन को पूर्ण करने के लिये लगभग 50 लाख रुपये और चाहिये जिसके लिये हम दानदाताओं से सादर अनुरोध कर रहे हैं।

आश्रम की आय के स्रोत के रूप में हमने सोलर पैनल लगाकर 30 किलो वाट क्षमता का विद्युत उत्पादन करने का प्रस्ताव तैयार किया है। इससे उत्पादित विद्युत को उत्तराखण्ड सरकार द्वारा उचित मूल्य पर खरीदा जायेगा। वर्तमान नियमों के अनुसार इस तरह के प्रोजेक्ट पर केन्द्र सरकार 70 प्रतिशत सब्सिडी देती है तथा 30 प्रतिशत उपभोक्ता को वहन करना पड़ता है। प्रस्तुत किये गये प्रस्ताव पर यदि केन्द्र सरकार की अनुमति प्राप्त हो जाती है तो प्रारम्भ में आश्रम को लगभग 7.5 लाख रुपया व्यय करना होगा। आइये हम सब मिलकर वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून द्वारा किये जा रहे समाजोपयोगी कार्यों में यथाशक्ति सहयोग करें। आप किस प्रकार आश्रम का सहयोग कर सकते हैं इसके लिये हमें पत्र द्वारा अथवा दूरभाष पर सूचित करें। आप अपने परिवारजनों के साथ तपोवन आश्रम में पधारें हमें आपका स्वागत करके प्रसन्नता होगी। कृपया अपना भ्रमण का कार्यक्रम फाइनल करने से पूर्व मेरे मोबाईल नं० 9412051586 पर वार्ता करके स्थान की उपलब्धता का पता अवश्य कर लें।

वैदिक साधन आश्रम तपोवन को दान देने वाले दानदाताओं की सूची

क्र.स.	नाम	धनराशि
1.	श्री बी.बी. जौहरी, दिल्ली	10000
2.	श्री मोहन लाल	10000
3.	श्री श्रीचन्द गोयल, दिल्ली	3000
4.	श्री रामकुंवर गुलिया, सोनीपत	2500
5.	श्रीमती सविता, रोहतक	500
6.	डॉ० ओम प्रकाश अरोड़ा एवं डॉ० विजय लक्ष्मी अरोड़ा, यू.एस.ए	51000
7.	श्रीमती सुनीता अरोड़ा	5100
8.	श्री शिवलाल गुप्ता	1100
9.	गुप्तदान	31000
10.	श्री राजेश सैनी	5100
11.	गुप्त दान (तपोभूमि)	100000
12.	गुप्त दान (तपोभूमि)	30000
13.	श्रीमती रविकान्ता अरोड़ा, नई दिल्ली	21000
14.	श्रीमती ललिता सहगल	1000
15.	श्री योगेश खट्टर, नोएडा	5100
16.	श्री हरीश वाधवा, दिल्ली	5100
17.	श्री कृष्ण लाल डंग, पौंटा साहिब	10000
18.	डॉ० विद्याधर शर्मा, यू.एस.ए.	100122
19.	श्री जनकराज गुप्ता, गुरदासपुर	9000
20.	श्री के.पी. सिंह, देहरादून	11000
21.	श्री संदीप अरोड़ा पुत्र श्रीमती रविकान्ता अरोड़ा, नई दिल्ली	21000
22.	श्री नन्दकिशोर अरोड़ा, दिल्ली	11000
23.	श्रीमती शीला देवी, दिल्ली	2100
24.	श्रीमती धर्मदेवी	1100
25.	श्री करतार सिंह सहरावत, दिल्ली	2100
26.	श्री सुमेर सिंह शास्त्री	500
27.	श्री सुनील आर्य	500
28.	श्री श्रीचन्द गोयल, दिल्ली	500
29.	श्री गुप्त बंसल, गाजियाबाद	521
30.	कुमारी रीतु, फरीदाबाद	500
31.	श्रीमती रेणु गुप्ता, दिल्ली	9000
32.	श्री नारायण सिंह	500
33.	श्री गजै सिंह, सहारनपुर	500
34.	सुश्री चाँद आर्या, जम्मूतवि	1000
35.	श्रीमती रीता बतरा	701
36.	श्री रामपाल आर्य	501
37.	कुमारी पुष्पा पुराणी	1100
38.	कुमारी वर्षा दवे	1100
39.	श्री सतवीर धनखड़, सोनीपत	500
40.	श्री रमेश कुमार अरोड़ा, दिल्ली	5000
41.	श्रीमती कृष्णा एवं श्री मोहिन्द्र धीरानी, यू.के.	15000
42.	श्री श्याम सुन्दर सोनी, गुड़गांव	20000
43.	श्री अर्चित हाण्डा	20000
44.	Hats Enterprises	20000
44.	श्री तनमय सोनी	20000
45.	Hats Enterprises	20000
46.	श्री श्याम सुन्दर सोनी, गुड़गाँव	25000
47.	श्री वेद प्रकाश ऐरी, होशियारपुर	2500
48.	श्रीमती सीमा आर्या	5100
49.	श्रीमती शकुन्तला आहुजा	5000
50.	डा० कुमुद पसरीचा	100000
51.	डा० सुमन शारदा, लुधियाना	50000
52.	सरदार हरविन्दर सिंह, लुधियाना	5000
53.	श्री निपुण डंग, लुधियाना	11000
54.	श्री दीपक वर्मा, फरीदाबाद	10000
55.	श्रीमती तनु वर्मा, फरीदाबाद	5000

वैदिक साधन आश्रम तपोवन देहरादून सभी दानदाताओं का धन्यवाद करता है।

De Bono

Saturn Series

CPU Holder

Slide out Keyboard tray

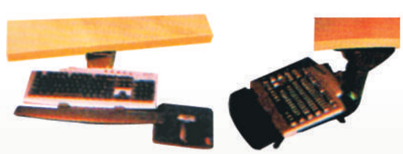

Swivel and Tiltable keyboard tray

Wire Management

All dimensions are subject to change without any prior notice because of continuous research & development. All designs shown here are proprietary: Any infringement is liable for prosecution.

ISO:9001 DNV CERTIFIED

DE BONO FLEXCOM (INDIA) LTD.: Kukreja House, 1st Floor, 46, Rani Jhanshi Road, New Delhi-110055

Ph : 011-23540721. 23533936 **Fax :** 23533944 **Email :** debono@debonoindia.com

E-mail : delite@delitekom.com

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2015-17 समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

MUNJAL SHOWA मुंजाल शोवा

मुंजाल शोवा लिमिटेड देश में टू व्हीलर / फोर व्हीलर उद्योग में सभी प्रमुख ओ.ई.एम. के लिए शॉक एब्जोर्बर, फ्रंट फोर्क्स, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कंवेंशनल) और गैस स्प्रिंगो का सबसे बड़ा निर्माता है। निर्मित उत्पाद, गुणवत्ता और सुरक्षा के कड़े मानों के अनुरूप होते हैं। कम्पनी के उत्पाद बाधामुक्त, आरामदेह, चिरस्थायी, विश्वसनीय और सुरक्षित यात्रा के लिए जाने जाते हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, टीएस–16949, आईएसओ 14001, ओ.एच.एस.ए.एस. 18001 और टीपीएम प्रमाणित कम्पनी है। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है।

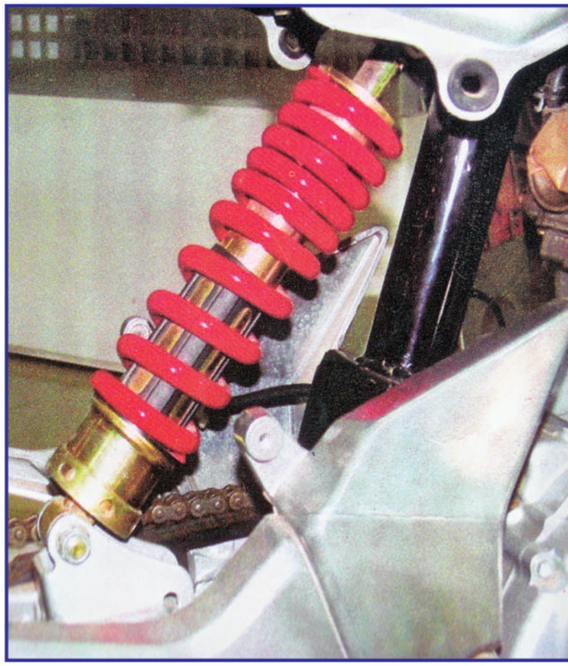

टीपीएम प्रमाणित कम्पनी

आईएसओ / टीएस–16949–2002 प्रमाणित

आईएसओ–14001 एवं ओएचएसएएस–18001 प्रमाणित

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

- हीरो मोटोकोर्प लिमिटेड
- मारुती सुजुकी इन्डिया लिमिटेड
- होन्डा कार्स इन्डिया लिमिटेड
- होन्डा मोटर साइकल एवं स्कूटर इन्डिया (प्र0) लिमिटेड
- इन्डिया यामहा मोटर (प्र0) लिमिटेड

हमारा उत्पादन

- स्ट्रट्स / गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फ्रन्ट फोर्कस
- गैस स्प्रिंगस / विन्डो बैलेन्सर्स

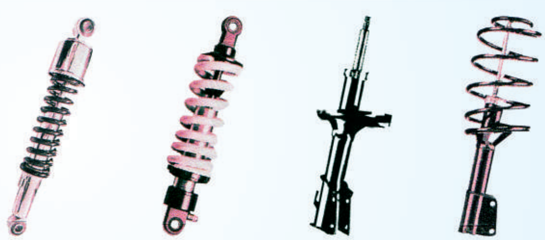

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं0 9–11, मारुति इन्डस्ट्रीअल एरिया, गुड़गाँव। दूरभाष: 0124–2341001, 4783000, 4783100

प्लॉट नं0 26 इ एवं एफ, सेक्टर–3, मानेसर, गुड़गाँव। दूरभाष: 0124–4783000, 4783100

प्लॉट नं0 1, इन्डस्ट्रीअल पार्क–2, सालेमपुर गाँव, मेहदूद–हरिद्वार, उत्तराखण्ड दूरभाष: 0124–4783000, 4783100

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।

संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com